Bachelor of Commerce (DDE)

Semester – II

Paper Code – BM2003-II

BUSINESS MANAGEMENT – II

व्यावसायिक प्रबंध – II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr. Preeti Sharma*

Copyright © 2002, 2020; Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

B.Com-I (First Semester)

Business Management-II

PAPER CODE: BM2003-II

Theory Paper Max Marks: 80

Time: 3 Hrs **Internal marks: 20**

Note: - The Examiner shall set nine questions in all covering the whole syllabus. Question No.1 will be compulsory covering all the units and shall carry 8 small questions of 2 marks each. The rest of the eight questions will be set from all the four units. The examiner will set two questions from each unit out of which the candidate shall attempt four questions selectingone question from each unit. All the questions shall carry 16 marks each.

Unit- I

Leadership: concept and leadership styles; Leadership theories (Tannenbaum and Schmidt); Likert's System Management;

Unit- II

Communication: Nature, Process, Importance, Networks and barriers; Effective communication.

Unit- III

Managerial Control: Concept and process; effective control system; Techniques of control: Traditional and modern.

Unit- IV

Management of Change: Concept, Nature and process of planned change; resistance to change; emerging horizons of management in a changing environment.

Suggested Readings:

1. Druker. Peter F. Management Challenges for the 21st century; Butter worth Heinemann Oxford.

2. Weihrich and Koontz, O. Donnel: Essential of Management Tata Mc Graw Hill, New Delhi.

3. Parsad L. M., Principles and Practice of Management: Sultan Chand and Sons.

विषय–सूची

युनिट–1	नेतृत्व	1–10
युनिट–2	सन्देशवाहन	11–25
युनिट–3	नियंत्रण	26–34
युनिट–4	परिवर्तन का प्रबन्ध	35–43

◇◇◇

Unit–I

नेतृत्व

अध्याय का उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य आपको नेतृत्व के बारे में विस्तृत समझ प्रदान करना है। इस अध्याय को पढ़ने के बाद छात्र/पाठक निम्नलिखित को समझने में सक्षम होंगेः

1. नेतृत्व का अर्थ
2. नेतृत्व की विशेषता,
3. नेतृत्व का महत्व
4. नेतृत्व की विचारधाराएँ
5. विभिन्न प्रकार की नेतृत्व शैली
6. लिकर्ट की प्रबन्ध प्रणाली

प्रत्येक समूह जो चाहे वह बड़ा हो या छोटा, एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने सदस्यो के कार्य अभिप्रेरण और निर्देश देने के लिए एक प्रभावशाली नेतृत्व की होती है। नेतृत्व प्रबन्ध कला का एक महत्वपूर्ण पहल में, प्रभावी नेतृत्व की योग्यता प्रभावी प्रबन्धक बनने की एक कुंजी है तथा यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पर अनिवार्य कार्य करने तथा सम्पूर्ण प्रबन्धकीय कार्य मिलाने में, एक प्रबन्धक प्रभावी नेता होगा। नेतृत्व से तात्पर्य : व्यक्ति के उस गुण से है जिसके माध्यम से वह अपने अनुयायियों का पथ पदर्शन करता है और नेता के रूप में उस का संचालन करता है।

नेतृत्व की महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्न हैं–

1. **बर्नाड**–बर्नाड के मतानुसार नेतृत्व का आशय व्यक्ति के व्यवहार के उस गुण से है जिसके द्वारा वह अन्य लोगों का प्रयास से सम्बन्धित कार्य करने से मार्गदर्शन करता है।''
2. **मुने तथा रेले**–इनके शब्दों में "प्रक्रिया में प्रवेश करते समय अधिकारी वर्ग, जो स्वरूप धारण करता है, उसे नेतृत्व करते है।
3. **थियो हैमन**–हैमन के अनुसार, "नेतृत्व को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा आधिकारी अन्य व्यक्तियों के कार्य को संस्था और व्यक्ति, दोनों के बीच, इस प्रकार की मध्यस्था करके नि से निर्देशित मार्गदर्शन तथा प्रभावित करता है तथा विशिष्ट उद्देश्यों को चुनने तथा प्राप्त करने में दोनों को अधिकतम प्रदान करता है।

नेतृत्व की विशेषताएं

1. **अनुयायी**–नेतृत्व की प्रमुख विशेषता नेता के कुछ न कुछ अनुयायियों का होना है। अन्य शब्दों में अनुयायियों के बिना कोई नेता नहीं हो सकता इसलिए यह ठीक ही कहा गया है कि अनुयायियों के अभाव में नेता एवं उसके नेतृत्व की कल्पना तक नहीं की जा सकती। नेतृत्व की विशेषताएं निम्न दो बातों पर बल देते हैं
    1. नेता को अपने अनुयायियों से स्वाभाविक आज्ञा पालन प्राप्त होना चाहिए।
    2. नेता नेतृत्व अनुयायियों को स्वीकर होना चाहिए।

2. **क्रियाशील सम्बन्ध**–नेता और उसके अनुयायियों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध निष्क्रिय न होकर कुछ निश्चित क्रियाओं के आधार पर होते हैं अन्य शब्दों में और अनुयायियों के पारस्परिक सम्बंध निष्क्रिय न होकर क्रियाशील होते हैं। नेता अपने अनुयायियों को कार्य करने के लिए दिशा प्रदान करता है और उन्हें इनका अनुसरण करके लिए प्रेरित करता है नेता स्वयं भी अपने अनुयायियों के साथ क्रियाएं करता है। और उनका सहयोग प्राप्त करता है।

3. **सामान्य लक्ष्य**–नेतृत्व की यह प्रकृति है कि नेता संस्था के सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपने अनुयायियों के प्रयासो को निर्देशित करता है नेता अपने अनुयायियों को निर्धारित लक्ष्यों की जानकारी देता है उन्हें लक्ष्यों को स्पष्टता परिभाषित करता है और उनकी लक्ष्यों की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को दूर करने का प्रयत्न करता है।

4. **आदर्श आचरण**–एक नेता अपने आदर्श आचरण के द्वारा ही अधीनस्थों के सामने कुशल नेतृत्व प्रदान कर सकता है। यानि नेता को केवल भाषण देने वाला ही न होकर स्वयं संस्था के प्रति वफादार होना चाहिए।

5. **हितों की एकता**–नेता और उसके अनुयायियों के मध्य हितों कि एकता होनी चाहिए किसी संगठन में नेतृत्व का कोई प्रभाव नहीं चाहता यदि नेता और उसके अनुयायी अलग–अलग उद्देश्यों के लिए प्रयास करें किसी संगठन में प्रभास.. उसी समय कहा जा सकता है जबकि नेता और अनुयायी एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करें। इस सम्बध में जार्ज आर टेरी ने ठीक ही कहा है कि नेतृत्व पारस्परिक उद्देश्यों की पूर्ति हेत व्यक्तियों को स्वेच्छिक प्रयत्न करा प्रभावित करने की प्रक्रिया है।

   यह उल्लेखनीय है कि नेता और उसके अनुयायी या अनुयायियों में ही आपस में पूर्णयता हितों की एकता की आशा करना ठीक नहीं है लेकिन नेता में आपसी मतभेदों का दूर कर संगठन के लक्ष्यों और कर्मचारियों के लक्ष्यों में एकता स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए उसे अनयायियों का स्पष्ट कर देना चाहिए कि संस्था के हितों की रक्षा करना ही सभी के हितों की रक्षा करना है।

6. **व्यक्तिगत योग्यता** – नेतृत्व किसी व्यक्ति विशेष की अपनी योग्यता अथवा गुण पर आधारित होता हैं। उदाहरण के लिए, एक प्रबन्धक में नेतृत्व के जितने अधिक गुण होंगे, वह उतना ही सफल नेता बन सकेगा। किसी व्यक्ति विशेष की नेतृत्व संबंधी क्षमता के बारे में विभिन्न विद्धानों के अलग–अलग मत हैं एक मत के अनुसार यह योगदान जन्म जात होती है। दूसरे मत के अनुसार यह योग्यता प्राप्त की जा सकती है तथा तीसरे मत के अनुसार नेता जन्मते भी है और बनाए भी जाते हैं।

7. **प्रभावी कारण प्रक्रिया–** नेतृत्व प्रभावीकरण प्रक्रिया के रूप में होता है। यहां प्रभावीकरण का अर्थ दूसरे को अपने प्रभाव में लेने से है। नेतृत्व के अतर्गत नेता अपने अनुयायियों के साथ इस तरह का व्यवहार करता है कि वे स्वयं ही उसक प्रभाव में आ जाते हैं और जैसा वह चाहता है वे वैसा ही कार्य करने लगते हैं।

8. **अनावश्यक दबाव की आवश्यकता नहीं**–नेतृत्व का एक लक्षण यह भी है इसके अंतर्गत किसी प्रकार क दबाव का आवश्यकता नहीं होती, बल्कि प्रबन्धक अपने व्यवहार द्वारा कर्मचारियों पर ऐसा प्रभाव छोडता है कि वे स्वेच्छा से ही कार्य करने लगते हैं। कर्मचारियों को किसी बात से डरा कर कार्य करवाना नेतृत्व के अंतर्गत नहीं आता।

9. **पूरी क्षमता का प्रयोग**–जैसा कि स्पष्ट है कि सामान्यतः मनुष्य अपनी परी क्षमता का प्रयोग नहीं करता। पूरा क्षमता का प्रयोग करवाने के लिए उसे उत्साहित करने की आवश्यकता होती है जो कि नेतृत्व द्वारा नहीं सम्भव है । अतः नतृत्व की यह विशेषता है कि उसके लिए अनुयायी अपनी पूरी क्षमता से कार्य करने लगते हैं।

नेतृत्व का महत्व

1. **सामूहिक क्रियाओं का संचालन करने हेतु**–नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व के पक्ष में सबसे प्रबल तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि जहां भी निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति एक के अधिक व्यक्तियों द्वारा की जाएगी वहां नेतृत्व की आवश्यकता होगी। लक्ष्यों की पूर्ति हेतु की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के एक सूत्र में पिरोने का कार्य नेता ही करता है। यदि नेता द्वारा समूह की क्रियाओं का संचालन न किया जाये तो समूह अव्यवस्थित हो जाता है। अव्यवस्थित समूह के सदस्यों द्वारा की गई क्रियाएं सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति में सफल सिद्ध नहीं होती अतः सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक क्रियाओं के कुलश संचालन हेतु नेतृत्व का अत्यन्त महत्व है।

2. **समन्वय की भावना का विकास करने हेतु**–संगठन में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सदस्यों की क्रियाओं में समन्वय होना अति आवश्यक है। कुशल नेता संगठन के सदस्यों में समन्वय की भावना की भावना का विकास करता है और उनकी क्रियाओं को समन्वित करने के लिए आवश्यक निर्देशन प्रदान करता है नेतृत्व विद्युत शक्ति के प्रवाह के समान है। जिस प्रकार विद्युत शक्ति के प्रवाह से यन्त्र को शक्ति प्राप्त होती है। ठीक उसी प्रकार अनुयायियों को नेतृत्व प्राप्त होने से उनमें समन्वय की भावना विकसित होती है।

3. **कार्य हेतु अभिप्रेरित करने के लिए–**नेतृत्व को कर्मचारी अभिप्रेरण का एक स्त्रोत माना गया है। यह वह प्रेरक शक्ति है जो संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समूह के सभी सदस्यों को प्रेरणा प्रदान करती है। कुशल नेतृत्व जहां एक ओर कर्मचारियों को अभिप्रेरित करता है वहां दूसरी ओर मानवीय सम्बन्धों का विकास भी करता है। अनुयायी अपने नेता के मार्ग दर्शन से अपनी छिपी हुई योग्यता का प्रदर्शन करते हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हैं। इस प्रकार नृेतत्व गति के व्यक्तिगत गुणों को उभारता है और उन्हें अधिक कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करता है।

4. **सहयोग प्राप्त करने हेतु**–यह ठीक ही कहा है कि सहयोग प्राप्त करने की आधारशिला भी नेतृत्व ही है। संस्था की निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों का हार्दिक सहयोग अति आवश्यक है। इसके आभाव में का मनमटाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और वे छोटी–छोटी बातो पर लड़ने लग जाते हैं। फलतः औद्योगिक फैलने लग जाती है। कुशल नेता ही विभिन्न साधनों के माध्यम से अपने सहयोगियों एवं अनयागिनों का कर सकता है । एक नेता अपने मंत्री पूर्ण व्यवहार, प्रभावी सम्प्रेषण व्यवस्था, काये की मान्यता, शिकायतों पर और आदर्श आचरण द्वारा अधीनस्थों का हार्दिक एवं स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करने में सफल होता है।

5. **प्रबन्धक को सामाजिक प्रक्रिया के परिवर्तित करने हेतु–**कुशल नेतृत्व के द्वारा प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में परिवर्तित हो जाता है। प्रबन्ध वास्तव में अन्य व्यक्तियों के साथ मिल कर कार्य करने और कराने अतः एक कुशल नेता ही एक कशल प्रबन्धक हो सकता है। प्रबन्धक अपने मार्ग दर्शन और सहयोग को निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की और अग्रसर करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध के प्रत्येक स्तर पर भी नृेतत्व की होती है। कुशल नेतृत्व से जब कर्मचारी अपने व्यक्तिगत हितों का बलिदान करके संस्था के हितों की रक्षा करने को तत्पर हो जाते हैं तो प्रबन्धक भी कर्मचारियों को आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने के लिए सहर्ष तैयार हो जाते हैं।

6. **अधिकारी वर्ग को सुविधा प्रदान करने हेतु**–उपर्युक्त विवेचन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि नेतृत्व की , अचल कर्मचारी वर्ग को ही होती है अधिकारी वर्ग को भी आवश्यक सुविधाए प्रदान करने के लिए नेता होती है। नेतृत्व अधिकारी वर्ग को विभिन्न सुविधाएं प्रदान करता है। जिससे संस्था का कार्य बिना किसी बाधा गति से चलता रहता है। नेता में कुशल संचालन के सभी गुण होने के कारण अनुयायियों में परिश्रम करने

के जागृत हो जाती है जिससे संस्था के कार्य संचालन में कोई बाधा नहीं आती। इस प्रकार नेतृत्व कार्य संचा वाली बाधाओं को दूर करके अधिकारी वर्ग को सुविधा प्रदान करता है।

7. **व्यवसाय की सफलता हेतु**–इसमें कोई सन्देह नहीं कि नेतृत्व की किस्म ही सामान्यतः एक व्यवसायिक उपक्रम और असफलता को निश्चित करता है। पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार व्यावसायिक नेता किसी व्यावसायिक रा आधारभूत और दुर्लभ प्रसाधन है। अनेक व्यावसायिक उपक्रमों की असफलता का मुख्य प्रभाव नेतृत्व ही है इसी ग्लोवर ने भी अनेक व्यावसायिक प्रतिष्ठानों की असफलता का मुख्य कारण अकुशल नेतृत्व ही माना हैं अतः यह स्पा है कि व्यवसाय की सफलता के लिए कुशल नेतृत्व की अति आवश्यकता है।

8. **व्यक्तित्व के विकास हेतु**–संगठन में सेवारत व्यक्तियों के लिए व्यक्तित्व को विकास में कुशल नेतृत्व का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कुशल नेता अपने अनुयायियों के नेतृत्व के विकास में पर्याप्त सहयोग प्रदान करता है और उनमें नेतृत्व सम्बन्धी गुण विकसित करता है अतः पीटर एफ. ड्रकर का मानना है कि, नेतृत्व व्यक्ति की दृष्टि को व्यापक एवं ऊर्ध्वगामी बनाता पास है, कार्य उत्पादन को उच्चता प्रदान करता है और अपरिमित क्षमता वाले व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

नेतृत्व की विचारधाराएँ

प्रत्येक संगठन में नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व को प्रारम्भ से ही स्वीकार किये जाने के कारण नेतृत्व की अलग–अलग विचारधाराओं का विकास हुआ है इन विचारधाराओं को कुछ विद्वानों ने प्राचीन एवं आधुनिक दो तरह की विचारधाराओं में विभक्त किया है। इन विद्वानों के अनुसार नेतृत्व की वह विचारधारा जो यह मानकर चलती है कि नेता जन्म लेते है तैयार नहीं किए जाते है। प्राचीन विचारधारा है इसके विपरीत जो विद्वान यह मानकर चलते हैं कि नेता जन्म भी लेते हैं और तैयार भी किये जाते हैं। आधुनिक विचारधारा है अब हम नेतृत्व की प्रमुख विचारधाराओं का अध्ययन करेगें।

गुण–मूलक विचारधारा–

आर्डवे टीड और चेस्टर आई. बर्नार्ड–इस विचारधारा के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं। नेतृत्व की यह परम्परागत विचारधारा सन् 1940 तक अपना विशेष महत्व रखती थी। इस विचारधारा कि यह मान्यता है कि वह व्यक्ति हा एक सफल नेता हो सकता है जिसमें नेतृत्व सम्बन्धी कुछ विशिष्ट गुण होते हैं। इन गुणों में शारीरिक, और मनोबल सम्बन्धी गणों को सम्मिलित किया जाता है। आर्डवे टीड के मतानुसार वही व्यक्ति एक कुशल नेता हो सकता है जिसमें निम्नालामा गुण पाये जाते हैं

1. शारीरिक शक्ति
2. उद्देश्य के प्रति निष्ठा
3. अपूर्व साहस एवं लगन
4. व्यक्तित्व
5. स्नेह एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार
6. तकनीकी क्षमता
7. शीघ्र निर्णय
8. सिखाने की क्षमता, और
9. योग्यता
10. विश्वास

इस विचारधारा का यह भी मानना है कि उपयुक्त सभी गण व्यक्ति में जन्म से होते हैं उन्हें उपार्जित नहीं किया जा सकता इस प्रकार यह विचारधारा यह मानकर चलती है कि, नेता जन्म लेते हैं बनाए नहीं जाते नेृतत्व की यह विचारधारा काफी लम्बे समय तक (1940) सभी प्रबन्धकों और विशेषज्ञों द्वारा स्वीकार की जाती रही है। इस विचारधारा को एक लम्बे समय तक अधिकार करते रहने का मख्य कारण यह रहा कि अध्ययनकर्ताओं और विद्वानों ने निगमन प्रणाली को अपना कर कुछ समय के जीवन का अध्ययन करके उनके प्रमुख गुणों का पता लगाया और उन्हीं गणों को नेतृत्व के लिए आवश्यकता में प्रस्तुत किया। यह विचारधारा आज भी अपना महत्व बनाए हए है क्योंकि यह एक नेता में जिन गुणों का होना आवश्यक होता है उन्हें पूर्णतया स्पष्ट करती है। इस विचार धारा का वर्तमान प्रर्याप्त महत्व है।

नेतृत्व शैलियाँ

शैली का आशय उस तरीके से है जिससे कि नेता अपने अनयायियों को प्रभावित करता है। यह नेता के काया क कुल ग्राम को जो कि कर्मचारियों द्वारा महसूस किया जाता है, को स्पष्ट करता है। यह उनके दर्शव, चातुर्थ एवं प्रवृति का प्रातना करती है। सामान्यतया एक नेता अनुभव, शिक्षण एवं प्रशिक्षण से अपनी शैली को जन्म देते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार नेता के नैतिक मूल्य, अनुयायियों में विश्वास, नेतृत्व के प्रति जागरूकता सुरक्षा तथा स्थिति नेता की शैली को प्रभावित करते है। कुछ विद्वानों के अनुसार नेतृत्व कार्य–परक या सम्बन्ध परक हो सकता है तो कुछ के अनुसार यह सकारात्मक एक नकारात्मक हा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्तों से ही नेतृत्व की शैलियों को जन्म मिला।

अग्रलिखित पंक्तियों में नेतृत्व की कुछ प्रमुख शैलियों का जिक्र किया गया है।

सकारात्मक एवं नकारात्मक नेतृत्व

नेता अपने अनुयायियों को लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करने के लिए यदि आर्थिक एवं अनार्थिक पुरस्कारों को काम में लेता है तो इसे सकारात्मक नेता कहा जायेगा। इस शैली के अन्तर्गत नेता अपने अनुयायियों को अधिक वेतन, भत्ते एवं सुविधायें प्रदान करता है, कर्मचारियों के शिक्षण एवं प्रशिक्षण की समुचित सुविधा देता है, निर्णयन में सहभागिता प्रदान करता है एवं उन्हें स्वतन्त्रता एवं स्वायतता प्रदान करता है तो कहा जायेगा कि नेता ने अनुयायियों को प्रभावित करने के लिए सकारात्मक शैली को काम लिया है।

इसके विपरीत यदि नेता भय एवं दण्ड पर अधिक भरोसा करता है तो माना जायेगा उसके द्वारा नकारात्मक शैली का उपयोग किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत नेता अपने अनुयायियों को नौकारी से हटाने, सुविधाओं को वापिस लेने, स्थानान्तरण करने, पदावनत करने, अधिकारों में कमी करने आदि का भय दिखाकर उन्हें प्रभावित करने का प्रयास करता है। इसमें नेता बॉस के रूप में अधिक काम करता है और नेता के रूप में कम।

आधुनिक युग में विद्वानों द्वारा सकारात्मक नेतृत्व शैली को ही स्वीकार किया गया है, यद्यपि कुछ परिस्थितियों में नकारात्मक शैली भी प्रभावी सिद्ध हो सकती है क्योंकि नकारात्मक नेतृत्व शैली में मानवीयता का अभाव है एवं निम्न कार्य सन्तुष्टि पायी जाती है, इसलिए सकारात्मक शैली को इस पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

कार्य विवरणात्मक एवं रूपान्तरात्मक नेतृत्व

कार्य विवरणात्मक नेतृत्व वस्तुओं के जैसा है और उसी अवस्था में प्रबन्ध करने से सम्बन्धित है। इस शैली में नेता व्यक्तियों की अपेक्षा वस्तुओं को अधिक महत्व प्रदान करता है और परिवर्तन में विश्वास नहीं करता। कार्य विवरणात्मक नृतत्व शैली की कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. यह व्यक्तियों के विकास के स्थान की बजाय वस्तुओं के प्रबन्ध पर अधिक बल प्रदान करती है।
2. यह सुरक्षात्मक या प्रतिक्रियात्मक नेतृत्व शैली है।
3. यह व्यक्तियों को संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के साधन के रूप मे काम लेती है तथा
4. इन नेताओं में सृजनता का अभाव पाया जाता है।

इसके विपरीत रूपान्तरात्मक नेतत्त्व वह शैली है जिसमें परिवर्तन, नवप्रवर्तन एवं साहसिकता को महत्व प्रदान किया जाता है। यह काफी दूरदर्शी शैली है जिसकी सहायता से परिवर्तनशील एवं प्रतिस्पधी वातावरण के अनुकूल संगठन को बनाया जा सकता है। यह व्यक्तियों में प्रतिबद्धता पैदा करती है एवं व्यक्तियों के विकास पर बल प्रदान करती है। रूपानतरात्मक नेता । एम टिची ने अग्र विशेषताएँ स्पष्ट की हैः

1. ये नेता अपने आपको परिवर्तन प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार करते है।
2.. ये साहसी व्यक्ति होते हैं।
3. ये व्यक्तियों के विकास में विश्वास करते हैं।
4.. ये नैतिक मूल्यों को बहुत महत्व देते हैं।
5. ये जीवनभर सीख प्राप्त करते रहते हैं।
6. इनमें जटिलता, संदिग्धता एवं अनिश्चितता पर विजय प्राप्त करने की योग्यता पायी जाती है तथा
7. ये स्वप्नदृष्टा व्यक्ति होते है तथा इनमें व्यक्तियों को प्रभावित करने की क्षमता होती है।

आधुनिक युग के विद्वानों की मान्यता है कि आगे आने वाले समय में रूपान्तरात्मक नेतृत्व की लोग अधिक आवश्यकता महसम करेंगे क्योंकि इसमें रूपान्तर क्षमता पाई जाती है।

कार्यपरक एवं सम्बन्ध–परक नेतृत्व

कार्यपरक नेतृत्व शैली वह है जिसमें नेता परिणाम प्राप्त करने में विश्वास करता है। उनके अनुसार व्यक्तियों को व्यस्त रख तथा उनसे अधिक कार्य करने की अपील करके अनुकूल परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। इसमें मानव को मशीन से अधिक नहीं माना जाता है। यह उत्पादक–परक विचार है एवं इसमें मानवीयता को अधिक महत्व प्रदान नहीं किया गया है। कार्यनेतृत्व शैली वह है जिसमें नेता समूह को कार्य प्रदान करता है, उनके द्वारा काम में ली जाने वाली प्रक्रिया को समझाता है और निर्धारित समय में कार्य को पूरा कराने पर ध्यान देता है। ऐसे नेता का व्यवहार तानाशाही, कठोर, दिशात्मक एवं मानवीयता से परे होता है।

कार्य–परक नेतृत्व शैली प्रत्येक परिस्थिति में अच्छी नहीं मानी जाती है। यदि नेता का व्यवहार तानाशाही का है तो वह सन्तुष्टि, सम्बद्धता एवं सहयोग में कमी लायेगा।

सम्बन्ध–परक नेतृत्व शैली वह है जिसमें नेता कर्मचारियों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि को सर्वाधिक महत्व प्रदान करता है। ऐसा नेता टीम भावना पैदा करने, मनोवैज्ञानिक समर्थन प्रदान करने, कर्मचारियों की समस्याओं के समाधान में सहायता करने आदि के कार्य करता है। वह पारस्परिक सम्बन्धों के निर्माण को बल प्रदान करता है और अनौपचारिक समूहों की विद्यमानता के महत्व को स्वीकार करना है। इसमें नेता का व्यवहार प्रजांत्रीय, सहभागिता वाला, अधीनस्थ परक एवं मानवीयता से ओत–प्रोत होता है।

शोधों से यह बात पुष्ट होती है कि सम्बन्ध–परक शैली उत्पादकता से संगतता तो नहीं रखती लेकिन यह कर्मचारियों की सन्तुष्टि एवं समूह सम्बद्धता में अवश्य वृद्धि करती है।

सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है उपर्युक्त दोनों में से कोई भी एक शैली नेता को सफल नहीं बना सकेगी। सफल नेता वह होगा जो दोनों शैलियों का संयोजित स्वरूप काम में लेगा यद्यपि उसमें वह सम्बन्ध–परक नेतृत्व शैली को कार्य–परक नसत्व शैली पर प्राथमिकता दे सकता है।

तानाशाही, सहभागी एवं लगाम रहित नेता

नेता द्वारा उपभोग की गई सता के आधार पर नेतृत्व शैली तानाशाही, सहभागी एवं लगाम रहित हो सकती है।

1. **तानाशाही**–नेता वह है जो समस्त निर्णयन सत्ता को अपने में केन्द्रित करता है और वह अनुयायियों द्वारा आदेशों की पूर्ण पालना करने की अपेक्षा करता है। इसमें नेता अपनी बात अनुयायी को बताता है लेकिन उसकी नहीं सुनता। हमेशा अपने को ही सही सही मानता है। आदेशों की पालन न करने वाले व्यक्तियों को दण्ड देने की व्यवस्था है। शैली की मुख्य विशेषता है।
   तानाशाही नृतत्व से नेता को आत्म–सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इसमें शीघ निर्णय लिये जा सकते हैं एवं कठोर नियन्त्रण स्थापित किया जा सकेगा यह अनुयायियों को सुरक्षा प्रदान करती है एवं कम योग्य व्यक्तियों की सहायता से लक्ष्यों की प्राप्ति को सम्भव बनाती है। कर्मचारी इस शैली को पसन्द नहीं करते। इसमें कर्मचारियों को न तो सहभागिता मिलती और न ही उनकी योग्यता का सम्मान किया जाता है। इससे कर्मचारियों में भय उत्पन्न होता है और उनकी पहलपन की शक्ति नष्ट होती है।
2. **सहभागी नेता**–अधिकार के विकेन्द्रीयकरण में विश्वास रखता है और संस्था का संचालन प्रजातन्त्र के मान्य सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। इसमें नेता एवं अनुयायी मिलकर निर्णय लेते हैं। यह नेता अपने कर्मचारियों को महत्वपूर्ण मानता है एवं उनकी योग्यताओं पर भरोसा करता है। इसमें कर्मचारियों को सक्रिय रूप से भागीदार बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।
   नेतृत्व की यह शैली बहुत लोकप्रिय है। इसमें नेता एवं अनयायी के मध्य मानसिक एवं भावनात्मक सहभागिता पाई जाता है। इससे कर्मचारियों की सन्तुष्टि के स्तर में वृद्धि होती है तथा सदढ निर्णय लिया जाना सम्भव होता है, कुछ लोगा की मान्यता है कि नेतृत्व की यह शैली आवश्यक कार्यो के लिए उपयक्त नहीं मानी जाती है तथा इसे खर्चीली विधि भा माना जाता है।
3. **लगाम रहित नेता**–यह वह नेता है जो अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों से बचने का प्रयास करता है। इस नेतृत्व शैली में नेता नाम–मात्र का होता है तथा उसकी भूमिका भी नगण्य होती है। अधीनस्थ स्वयं लक्ष्य निर्धारित करते हैं, प्रशिक्षित होते हैं एवं उत्प्रेरित होते हैं। इससे अधीनस्थों के उच्च स्तर की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। नेता सामान्यतया अधीनस्थों के कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता है।
   इस नेतृत्व शैली का बहुत अधिक उपयोग नहीं किया जाता है क्योंकि इसमें नेता के योगदान की उपेक्षा की जाती है। उपर्युक्त नृतत्व शैलियों में से कौन सी नेतृत्व शैली उपयोगी होगी यह समय एवं परिस्थितियों की मांग पर निर्भर करता है। एक स्थिति में वह तानाशाह हो सकता है तो दूसरी में सहभागी।

लिकर्ट की प्रबन्ध प्रणाली

मिशीगन अध्ययनों को आधार बनाकर रैन्सिस लिकर्ट ने प्रबन्ध के प्रतिरूपों को जानने के लिए गहन अनुसंधान किये। इनके आधार पर इन्होंने नेतृत्व के व्यवहार को समझने के लिए कुछ विचार विकसित किये। उनके अनुसार प्रभावशाली प्रबन्ध कर्मचारी–प्रधान होते हैं तथा अन्य कृत्य–प्रधान होते हैं। अपने इस शोधकार्य की अवधारणाओं के स्पष्टीकरण हेतु लिकर्ट ने प्रबन्ध की चाट प्रणालियों को स्पष्ट किया, जिन्हें नेतृत्व शैलियों के नाम जाना जाता है। ये निम्नलिखित हैं–

प्रणाली–1. शोषणात्मक–अधिकारिक
प्रणाली–2. उदार–आधिकारिक
प्रणाली–3. परामर्शात्मक
प्रणाली–4. सहभागितापूर्ण

इन प्रणालियों को निम्न तालिका की सहायता से समझा जा सकता है।

प्रणाली	नेतृत्व शैली	नेतृत्व प्रक्रियाएं	उत्प्रेरक शक्ति	पारस्परिक क्रय की सीमा
1	2	3	4	5
प्रणाली 1	शोषणात्मक आधिकारिक	तानाशाही प्रकृति अधीनस्थों में निर्णयन का उच्च स्तर पर केन्द्रीयकरण, कर्मचारियों को सहभागिता नहीं औपचारिक सम्प्रेषण तथा अधीनस्थों को स्वायत्ता नहीं।	अधीनस्थों को भय, धमकियों एवं दण्ड के आधार पर कार्य करने के लिए मजबूर करना, कभी–कभी पुरस्कार प्रदान करना, शारीरिक एवं सुरक्षा की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना।	उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य भय एवं अविश्वास के वातावरण में सीमित विचारों का आदान प्रदान होना।
प्रणाली 2	उदार आधिकारिक	मलिक एवं नौकर के सम्बन्ध में विश्वास, पैतृकवादी, प्रवृत्ति सीमित, उर्ध्वगामी सम्प्रेषण, सीमित अधिकारों का प्रत्योयोजन कठोर नियन्त्रण।	पुरस्कार एवं कुछ भय तथा दण्ड काम में लेना।	बहुत कम विचारों को आदान–प्रदान करना अर्थात् कभी–कभी कार्य सम्बन्धी समस्याओं के हल के लिए विचार जानना।
प्रणाली 3	परामर्शात्मक	अधीनस्थों में बहुत विश्वास लेकिन पूर्ण विश्वास का अभाव, निर्णयों पर नियन्त्रण बनाये रखने की इच्छा की विद्यमानता, खुला सम्प्रेषण, सीमित सहभागिता, अधिकारों का प्रत्यायोजन करना तथा अनौपचारिक संगठन का जन्म।	पुरस्कार तथा कभी–कभी दण्ड का उपयोग करना।	अधीनस्थों में विश्वास रखते हुये उचित पारस्परिक विचारों का क्रिया–प्रदान करना।
प्रणाली 4	सहभागिता पूर्ण	अधीनस्थों में पूर्ण विश्वास एवं आस्था, मित्रतापूर्ण व्यवहार मानवता से ओत–प्रोत, सक्रिय एवं निर्णयात्मक सहभागिता प्रदान करना, अनौपचारिक सम्बन्धों को महत्व प्रदान करना, मानवीय सम्बन्धों को महत्व प्रदान करना।	आर्थिक पुरस्कार प्रदान करना तथा संयुक्त रूप से इसके लिए प्रणाली का निर्धारण करना, प्रगति एवं उपलब्धि के अवसर प्रदान करना, प्रगति का निरन्तर मूल्यांकन करना, सहभागिता को बढ़ाना।	गहन एवं मैत्रीपूर्ण पारस्परिक लिया करना तथा अधीनस्थों पर पूरा भरोसा करना।

इस तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि प्रणाली–1 को कार्य–परक शैली कहा जा सकता है तथा प्रणाली–4 को सम्बन्ध–परक शैली का नाम दिया जा सकता है। शेष दो शैली इनके मध्य की स्थिति को स्पष्ट करती हैं।

यद्यपि लिकर्ट की इन प्रणालियों को विद्वानों का काफी समर्थन मिला है और प्रबन्धकों को प्रबन्ध के दर्शन को समझने में मदद मिली है तथापि निम्न आधारों पर इसकी आलोचना की गई है–

1. लिकर्ट की यह मान्यता कि जो प्रबन्ध प्रणाली–4 को अपनायेगा वह नेता के रूप में बहुत सफल होगा, प्रत्येक परिस्थिति में खरी नहीं उतरती।
2. इन विचारधाराओं में स्थायात्मक घटकों एवं उनके प्रभावों की उपेक्षा की गई हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि नेता की सफलता परिस्थितियों की मांग के अनुसार अपने आप को बनाने पर निर्भर करती है।
3. लिकर्ट के विचार क्योंकि एक छोटे समूह से सम्बन्धित थे, अतः सम्पूर्ण संगठन पर इनकी क्रियाशीलता संदिग्ध लगती है।
4. इन विचारों में वैज्ञानिक वैधता का भी अभाव पाया जाता है।

सारांश

1. **नेतृत्व का अर्थ** : नेतृत्व का अर्थ है किसी व्यक्ति की वह क्षमता जिसकी मदद से वह अपने अनुयायियों के समूह द्वारा वांछित कार्य प्राप्त करता है।

2. **नेतृत्व की विशेषता** : (i) अनुयायी, (ii) व्यक्तिगत क्षमता, (iii) प्रभाव प्रक्रिया (iv) जबरदस्ती की कोई आवश्यकता नहीं; (v) पूर्ण क्षमता उपयोग, (vi) आदर्श आचरण; (vii) नेतृत्व एक सतत प्रक्रिया है; (viii) नेतृत्व का एक हिस्सा है प्रबंधन लेकिन यह सब नहींय (ix) लीडरशिप कभी भी एक नई प्रक्रिया है, (x) नेतृत्व क्षमता को बदल देता है वास्तविकता मेंय और (xii) कुछ लोगों को अनुसरण करने की आवश्यकता के कारण नेता मौजूद हैं।

3. **नेतृत्व का महत्वः** (i) प्रेरणा का स्रोत, (ii) सहयोग के लिए आधार, (iii) समूह की गतिविधियों को निर्देशित करनाय (iv) समन्वय की भावना को बढ़ावा देना (v) अधिकारियों को सुविधाय (vi) सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करना। और (vii) व्यवसाय की सफलता का आधार।

4. **नेतृत्व की विचारधाराँ,** प्रत्येक संगठन में नेतृत्व की आवश्यकता एवं महत्व को प्रारम्भ से ही स्वीकार किये जाने के कारण नेतृत्व की अलग–अलग विचारधाराओं का विकास हुआ है। अब हम नेतृत्व की प्रमुख विचारधाराओं का अध्ययन करेंगे।

5. **मूलक विचारधारा**– आर्डवे टीड के मतानुसार वही व्यक्ति कुशल नेता हो सकता है जिसमें निम्नालामा पाये जाते हैं। i) शारीरिक शक्ति ii) उद्देश्य के प्रति निष्ठा iii) अपूर्व साहस व लग्न iv) व्यक्तित्व v) स्नेह एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार vi) तकनीकी क्षमता vii) शीघ्र निर्णय viii) सिखाने की क्षमता और योग्यता ix) विश्वास

6. **नेतृत्व शैलीः** शैली का आशय उस तरीके से है जिससे कि नेता अपने अनयायियों को प्रभावित करता है। अग्रलिखित पंक्तियों में नेतृत्व की कुछ प्रमुख शैलियों का जिक्र किया गया है। (I) सकारात्मक एवं नकारात्मक नेतृत्व (II) कार्य विवरणात्मक एवं रूपान्तरात्मक नेतृत्व (III) कार्यपरक एवं सम्बन्ध–परक नेतृत्व

7. **लिकर्ट की प्रबन्ध प्रणाली** : लिकर्ट ने प्रबन्ध की चाट प्रणालियों को स्पष्ट किया, जिन्हें नेतृत्व शैलियों के नाम जाना जाता है। ये निम्नलिखित हैं–

   प्रणाली–1– शोषणात्मक–अधिकारिक

प्रणाली–2– उदार–आधिकारिक

प्रणाली–3– परामर्शात्मक

प्रणाली–4– सहभागितापूर्ण

अभ्यास

लघु प्रश्नः

1. नेतृत्व और नेता द्वारा आप क्या समझते हैं?
2. नेतृत्व की कोई तीन विशेषताएँ लिखिए।
3. कार्य विवरणात्मक एवं :पान्तरात्मक नेतृत्व शैली की तीन विशेषताएँ लिखिए।
4. कार्यपरक एवं सम्बन्ध–परक नेतृत्व शैली क्या है? इसका मूल्यांकन करें।
5. निरंतरता के रूप में नेतृत्व पर संक्षिप्त नोट लिखें।
6. लिकर्ट की प्रबंध प्रणाली क्या है?

दीर्घ प्रश्नः

1. नेतृत्व को परिभाषित करें। मुख्य नेतृत्व कार्य क्या हैं?
2. गंभीर रूप से नेतृत्व की विभिन्न शैलियों की जांच करें।
3. नेतृत्व शैली से आप क्या समझते हैं? सकारात्मक और नकारात्मक नेतृत्व की विशेषताओं, गुणों और अवगुणों की व्याख्या करें।

Unit–II

सन्देशवाहन

(Communication)

अध्याय का उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य आपको सन्देशवाहन के बारे में विस्तृत समझ प्रदान करना है। इस अध्याय को पढ़ने के बाद छात्र निम्नलिखित को समझने में सक्षम होंगे।

1. सन्देशवाहन का अर्थ
2. सन्देशवाहन की विषेशता,
3. सम्प्रेषण प्रक्रिया
4. सन्देश वाहन के प्रकार
5. प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन के आवश्यक तत्व
6. सम्प्रेषण की बाधायें
7. बाधाओं को दूर करने हेतू सुझाव
8. संचार–व्यवस्था का महत्व

सन्देशवाहन (सम्प्रेषण) का अर्थ

आधुनिक युग तकनीकी यग है जहां एक ओर भीमकाय उत्पादन सम्भव हुआ वहां दूसरी ओर प्रत्येक उद्योग में कर व्याक्तयों की संख्या में भी पर्याप्त वद्धि है अतः संस्था में सभी व्यक्तियों का एक सूत्र में पिरोने के लिए सन्देशवाहन व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्देशवाहन का अर्थ दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य तथ्यों, विचारों, अनुमानों या संवेगों के पारस्परिक आदान–प्रदान से है वर्तमान समय में तार, टलीफोन, टेलीविजन तथा रेडियों आदि ने विचारों के सन्देश वाहन को अधिक सुलभ बना दिया स्वयं सन्देशवाहन नहीं है।

सन्देशवाहन की परिभाषाएँ

सन्देशवाहन एक व्यापक शब्द होने के कारण ही विभिन्न विद्वान इसके अर्थ के सम्बन्ध में एक मत नहीं है अतः इसके अक्षर की ठीक ढंग से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को अध्ययन करना आवश्यक है। सन्देशवाहन की विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं अग्र हैं:

1. **कीथ डेविस** के अनुसार, "सन्देशवाहन प्रक्रिया वह है जिसमें सन्देश और समझ को एक से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।''
2. **न्यूमैन तथा समर** के अनुसार, "सन्देशवाहन दो या दो से अधिक व्यक्तिगत के मध्य तथ्यों, विचारों, समितियों अथवा भावनाओं का विनियम है।''
3. **मेयर** के अनुसार, "सन्देशवाहन से आशय एक व्यक्ति के विचारों और समितियां से दूसरे व्यक्ति को अवगत कराने से है।''

सन्देशवाहन की विशेषताएं

विभिन्न परिभाषा का अध्ययन करने से सन्देशवाहन की निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं–

1. **दो या दो से अधिक व्यक्ति**–सन्देशवाहन की प्रथम महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें कम से कम दो व्यक्ति होने चाहिए क्योंकि कोई अकेला व्यक्ति स्वयं के साथ विचारों का आदान–प्रदान नहीं कर सकता। अपनी बात कहने के लिए एक सुनने वाले की भी जरूरत होती है अतः कम से कम दो व्यक्ति हों जिनमें से एक सूचना भेजने वाला व दूसरा सूचना ग्रहण करने वाला होता है।

2. **विचारों का विनियम**–विचारों के आदान–प्रदान के अभाव में सन्देशवाहन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सन्देश वाहन की प्रक्रिया का पूरा करने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच विचारों, आदेशों, भावनाओं आदि का विनियम होना चाहिए।

3. **आपसी समझ**–आपसी समझ से अभिप्राय यह है कि सूचना भेजने वाले का अपनी बात कहने का जो भाव है उसी अथ में सूचना प्राप्त करने वाला उसे समझ ले सन्देशवाहन की प्रक्रिया के लिए सूचना प्राप्तकर्ता के लिए सूचना का पालन करना आवश्यक नहीं है मात्र समझ लेना ही पर्याप्त है।

4. **प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सन्देशवाहन**–सन्देशवाहन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि सूचना देने वाला व सूचना लेने आमने–सामने हो। सन्देशवाहन प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार का हो सकता है। प्रत्यक्ष सन्देशवाहन का आभा आमने–सामने वार्तालाप से है जबकि अप्रत्यक्ष सन्देश वाहन में सन्देश अन्य साधनों के माध्यम से भेजा जाता है।

5. **लगातार प्रक्रिया**–सन्देश वाहन लगातार या कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया है। जैसे व्यवसाय में प्रबन्ध द्वारा अधीनस्थों को कार्य सौंपना, कार्य की प्रगति जानना व दिशा निर्देश देना आदि क्रियाएं लगातार करनी पड़ता है।

6. **शब्दों व संकेतो का प्रयोग**–सूचनाओं के विनियम के लिए अनेक साधन हो सकते हैं जैसे लिखित, मौखिक तथा साकतिक उम सन्देश वाहन के उदाहरण है स्कूल या कालेज में छुटटी की घंटी बजाना. गर्दन हिलाकर कोई बात कहना, आखे दिखाना, किकेट में हाथ की अंगुली उठाकर बल्लेबाज के आऊट होने का आदि।

7. **चक्रिय प्रक्रिया के रूप में**–सन्देश वाहन एक चक्रिय प्रक्रिया के रूप में होता है। प्रत्येक सन्देश पर प्रतिक्रिया होता है पनः एक नए सन्दश का जन्म देती है और यह क्रम चलता है सन्देश वाहन का चक्रिय प्रारूप निम्न चित्र स्पष्ट करता ।

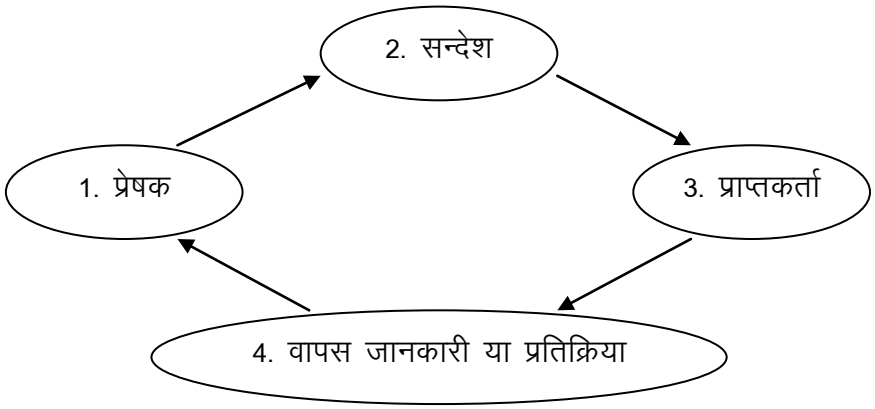

8. **सहयोग का आधार**–सन्देशवाहन व्यवसायिक संगठन के कार्य करने वाले विभिन्न लोगों के मध्य सहयोग की भावना का जन्म देता है इसके द्वारा सभी व्यक्ति अपने विचार एक दूसरे के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं। .

सम्प्रेषण प्रक्रिया

सम्प्रेषण की प्रक्रिया प्रेषक, संदेश एवं प्राप्तकर्ता के संयोजन से बनी है। इसे चित्र संख्या निम्न के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

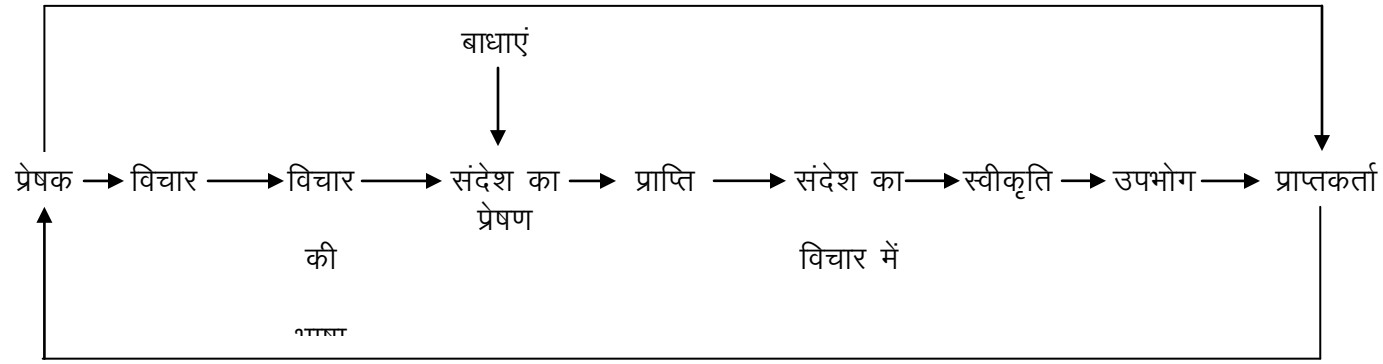

उपर्युक्त चित्र से जो चरण प्रतिबिम्बिता होते हैं, उनका समायोजन ही सम्प्रेषण प्रक्रिया कहलाता है। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार है–

1. **विचार**–सम्प्रेषण की प्रक्रिया का प्रारम्भ प्रेषक द्वारा प्रेषित किये जाने वाले संदेश के सन्दर्भ में विचार विकासित करने से है। यह सम्प्रेषण प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम है और यह इस बात पर बल देता है कि मुँह खोलने से पहले यह सुनिश्चित करना होगा की आपका मस्तिष्क पूरी तरह से सतर्क है एवं काम कर रहा है।

2. **विचार को भाषा देना**–भेजे जाने वाले संदेश के निश्चय कर लिये जाने के बाद विचार को संदेशबद्ध करने का चरण आता है। विचार को समूचित शब्दों, चित्रों, चिन्हों, तालिकाओं में बदलना ही विचार को भाषा देना या संदेशबद्धता कहलाता है। संदेश ऐसा हो जिसमें नयापन हो, वह महत्वपूर्ण हो एवं वह प्रभावी हो। इसके लिए संदेश स्पष्ट, अर्भपूर्ण, सरल एवं समझने योग्य, आकर्षक एवं पूर्णता वाला होना चाहिए। इसके लिए आधुनिक युग में कम्प्यूटर भाषा को भी काम में लिया जाता है। यह संदेशबद्धता ऐसी हो जिसमें संदिग्धता को स्थान नहीं मिलता हो।

3 **संदेश का प्रेषण**–संदेश के प्रेषण में प्रेषक को प्राप्तकर्ता से जोड़ने का कार्य किया जाता है। इसके लिए संदेश को प्रेषण करने की विधि का निर्धारण करना होगा। यह विधि मौखिक विचार विमर्श, लिखित पत्र, टेलिफोन, टैलैक्स, दूत–भेजना, तार आदि में से कोई भी हो सकती है। अच्छे सम्प्रेषण के लिए आवश्यक है कि काम में लिया गया माध्यम संदेश एवं प्राप्तकर्ता के लिए उपयुक्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त संदेश के प्रेषण में प्रेषक को यह भी या सम्प्रेषण माध्यम बाधाओं से स्वतंत्र है।

4. **प्राप्ति–**संदेश के प्रेषण के बाद संदेश को प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त करने का कदम आता है। इसके लिए प्राप्तकर्ता को अपने आपको संदेश को प्राप्त करने के लिए तैयार करना होगा। यदि सम्प्रेषण मौखिक है तो प्राप्तकर्ता को ना होगा और यदि वह लिखित है तो उसे अपने आप में संदेश को समझने की योग्यता सृजित करनी होगी। किसी भी संदेश का महत्व तब ही है जबकि प्राप्तकर्ता उसे पूर्ण निष्ठा से प्राप्त करे।

5. **संदेश को विचार में बदलना**–इसके अन्तर्गत प्राप्तकर्ता दिये गये संदेश को विचार में बदलने का कार्य करता है ताकि वह उसको उसी रूप में समझ सके जिस रूप में प्रेषक ने उसे भेजा है। संदेश यदि उस भाषा में

है जिसे प्राप्तकर्ता नहीं जानता या उसमें ऐसे चिन्ह काम में लिये गए हैं जो प्राप्तकर्ता के लिए भिन्न अर्थ रखते हैं तो संदेश को विचार में काफी जटिल होगा। अतः प्राप्तकर्ता को चाहिए कि वह प्रेषक के साथ साम्य बिठाने का प्रयास करे। इसके अन्तर्गत को समझा जाता है। इसे सम्प्रेषण की आत्मा कहा जाता है।

6. **स्वीकृति**–जब संदेश को प्राप्त कर लिया जाता है और समझ लिया जाता है तो प्राप्तकर्ता को उसे स्वीकार या करने का अवसर मिलता है। संदेश भेजने वाला तो चाहेगा कि संदेश प्राप्तकर्ता संदेश को उसी रूप में स्वीकर को रूप में भेजा गया है लेकिन प्राप्तकर्ता चाहे तो पूर्ण संदेश को स्वीकार कर सकता है या पूर्ण संदेश को अस्वीकार सकता है या आंशिक संदेश को स्वीकार एवं आंशिक संदेश को अस्वीकर कर सकेगा।

7. **उपयोग**–इसका सम्बंध संदेश के उपयोग करने से है। वह संदेश पर उचित कार्यवाही करेगा अर्थात् सुरक्षित रख सकेगा या अन्यथा उपयोग कर सकेगा इसमें प्राप्तकर्ता का संदेश पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।

8. **पुनर्निवेशन**–यह सम्प्रेषण प्रक्रिया का अंतिम चरण है जिसके माध्यम से सम्प्रेषण की प्रभावशीलता की जांच की जाती है। पुनर्निवेशन के माध्यम से प्रेषण को यह जानकारी प्राप्त हो सकेगी कि उसका संदेश सही रूप से समझा गया है या नहीं। यदि इससे यह पता लगे कि संदेश का पालन सही प्रकार से नहीं किया गया तो उचित सुधारात्मक कदम उठाये जा सकेगे। इसके अतिरिक्त पुनर्निवेशन की मदद से यह भी पता लग सकेगा कि सम्प्रेषण से अपेक्षित परिणाम प्राप्त हुये या नहीं। इसलिये इस चरण को सम्प्रेषण से बहुत महत्व प्रदान किया जाता है।

सन्देश वाहन के प्रकार

एक संगठन में विभिन्न पदों पर कार्य कर रहे कर्मचारियों को सन्देशवाहन के द्वारा जोडने में अनेक मार्ग, अथवा श्रखलाएं होती हैं। इन सभी श्रंखलाओं के जोड को सन्देश वाहन का जाल या ताना बाना कहते हैं सन्देश वाहन के जाल में मुख्य दो प्रकार के सन्देशवाहन को सम्मिलित किया जाता है। औपचारिक व अनौपचारिक सन्देशवाहन संगठन में दोनों ही सन्देश वाहन की उपयोगिता है इन श्रृखलाओं को सन्देश वाहन के प्रकार भी कहा जाता है।

औपचारिक सन्देशवाहन

औपचारिक सन्देशवाहन का अभिप्राय विचारों व सूचनाओं के ऐसे विनियम से है जो संगठन ढांचे के अन्तर्गत होता है। अर्थात विचारों का ऐसा आदान–प्रदान जो निश्चित पथ से होकर गुजरता है यह सन्देश वाहन के प्रवाह का नियन्त्रण करने के लिए जानबुझकर किया गया प्रयत्न होता है जिससे कि सूचनाएं बिना किसी रूकावट के कम लागत पर ठीक तरीके से, ठीक समय पर, वांछित स्थान पर पहुंचती हैं।

विशेषताएं

1. **लिखित व मौखिक**–औपचारिक सन्देश वाहन लिखित व मौखिक दोनों प्रकार होता है। दैनिक कार्यों को मौखिक सन्देशवाहन द्वारा निपटा लिया जाता है, जबकि नीति सम्बंधी कार्यों को लिखित रूप से किया जाता है।

2. **औपचारिक सम्बंध**–यह सन्देश वाहन उन कर्मचारियों के बीच में होता है जिसके सम्बन्ध द्वारा औपचारिक सम्बंध स्थापित किए गए है।

3. **निश्चत पथ**–सन्देश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक एक निर्धारित मार्ग पर करके जाना होता है।

लाभ

1. **अधिकारियो के पद की गरिमा कि सुरक्षा**–औपचारिक सन्देश वाहन में अधिकारियों व अधीनस्थों का लगा बना रहने के कारण लाइन अधिकारियों के पद की गरिमा बनी रहती है। फलस्वरूप अधीनस्थों पर नियंत्रण करने व उत्तरदायित्व निर्धारण करने में सुविधा रहती है।

2. **स्पष्ट एवं प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन**–औपचारिक सन्देशवाहन में प्रबन्धकों व अधीनस्थों के मध्य साधा सपना एक की योग्यता, आदतों. भावनाओं आदि को समझ जाते हैं प्रबन्धकों को पता रहता है कब व किन अधीनस्थों के मध्य सीधा सम्पर्क होता है। दोनों अधीनस्थो को सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है इस प्रकार यह सन्देशवाहन समय पर ही सूचना पर ही सूक्ष्म है अतः यह स्पष्ट और प्रभावपूर्ण होता है।

सीमायें

1. **कार्य का अधिक बोझ**–आधुनिक व्यवसायिक संगठन में अनेक सूचनाओं. संदेशों व अन्य बातों का सन्देश वाहन करना पड़ता है औपचारिक सन्देश वाहन से इसको एक निश्चित मार्ग पर भेजा जाता है। जिससे अधिकारिया का आप इस कार्य में व्यय हो जाता हो और उनके कुछ कार्य छूट जाते हैं।

2. **सूचनाओं का स्वरूप बदलना**–यह विधि सचना के प्रवाह में रूकावट भी बन सकती है। कई बार प्रेषक व प्राप्तकता के मध्य रास्ता इतना लम्बा होता है कि अनेक लोगों के हाथों से होकर जाना पडता है प्राप्तकतो तक पहुचत उसका स्वरूप ही बदल जाता है।

3. **अधिकारियों की लापरवाही**–अधिकारी अधीनस्थों के सझावों व शिकायतों पर अधिक ध्यान नहीं देते इसे नित्यक्रम के कार्य मानकर अनदेखा कर देते हैं। उनके मस्तिष्क में एक बातं बैठ जाती है कि ये सब प्रतिदिन के कार्य हैं यदि श्रमिक वर्ग की किसी बात को संचालकों तक पहुंचाया जाता है। तो अधिकारी अपने सझाव और जोड़ देते है जिससे वास्तविकता की जानकारी नहीं मिल पाती।

औपचारिक सन्देशवाहन के प्रकार

1. **नीचे की ओर अथवा अधोमुखी सन्देशवाहन** – सन्देशवाहन जो उच्च अधिकारियों द्वारा अधीनस्थों को किया जाता है नीचे की ओर सन्देश वाहन कहलाता है। संस्था में उच्च अधिकारियों का निर्णय लेते है और उनको लागू करने के बारे में आदेश व निर्देश देते है। इस संदेशवाहन में आदेश, नियम, सूचनाएं, नीतियां, निर्देश आदि को सम्मिलित किया जाता है। नीचे की ओर संदेशवाहन का मुख्य लाभ यह है कि इससे अधीनस्थों को समय पर उपयोगी सूचनाएं प्राप्त होती हैं, जिनसे उनके कार्यों में सुविधा रहती है।

2. **ऊपर की ओर अथवा उर्ध्वमुखी संदेशवाहन**–यह संदेशवाहन नीचे की ओर संदेशवाहन के बिल्कुल विपरीत है। इसका प्रवाह अधीनस्थों के उच्च अधिकारों की ओर होता है इस सन्देशवाहन की विषय सामग्री में सुझाव, प्रतिक्रियाए, प्रतिवेदन, शिकायतें आदि आते हैं इस सन्देश वाहन में उच्च अधिकारियों का निर्णय लेने की सुविधा रहती है। अधीनस्थों की शिकायतों को दूर करके संस्था में स्वच्छ वातावरण तैयार किया जाता है। उनके सुझावों को लागू करके उसमें संस्था के प्रति लगाव की भावना पैदा करता है। अनेक सम्भावित खतरों के बारे में पूर्व सूचना मिल जाने पर उच्च अधिकारी सावधान हो जाते हैं। अतः संस्था के उद्देश्यों को आसानी से पूरा करने में ऊपर की ओर सन्देशवाहन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। गट अधीनस्थ अधिकारी ठीक नहीं हैं तो ऊपर की तरफ सन्देशवाहन को गलत तरीके से भी प्रस्तुत किया जा सकता है। कोई भी अधीनस्थ इस तरह की सूचना नहीं देंगा, जिससे उसके हितों की हानि हो। दूसरी ओर वह अपने अधिकारी की खुशी के लिए कई बार गलत सूचनायें भी दे सकता है।

3. **समतल सन्देश वाहन**–समतल सन्देशवाहन उस समय होता है जब एक ही स्तर के दो व्यक्ति सचनाओं करते हैं। समतल सन्देश वाहन का प्रयोग एक ही स्तर के अधिकारी समान प्रकृति की समस्याओं को सलयाने का लोगों के अनभवों का लाभ उठाने के लिए करते हैं। समतल सन्देशवाहन के बिना एक संगठन सफलता पानी सकता। समतल सन्देशवाहन की विषय वस्तु में सूचनाएं, निवेदन, सुझाव, पास्परिक समस्याएं तथा समन्वय जानकारियों को सम्मिलित किया जाता है।

अनौपचारिक अथवा अंगूरीलता सन्देश

अर्थ–अनौपचारिक संबंधों (जैसे मित्रता एक ही क्लब की सदस्यता, एक ही जन्म स्थान का होना आदि) पर आधारित होने के कारण यह सन्देशवाहन हर तरह की संगठनात्मक औपचारिकताओं से मुक्त होता है। औपचारिक सन्देशों का विनिमय प्राय सामूहिक भोजन के समय सामाजिक अवसरों, पार्टियों आदि पर हुआ करता है। अवसरों पर अधिकारी वर्ग अपने अधीनस्थों के इस तरह की सूचनायें प्राप्त कर लेते हैं जिनको औचारिक सन्देश वाहन के दौरान एकत्र करने में कठिनाई आती और म विवेचन, सुझाव आदि समिलित होते है इसके अंतर्गत सन्देशवाहन इशारे से सिर हिलाकर, मुस्कराहट द्वारा तथा शान्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक अधिकारी अपने अधीनस्थों की शिकायत अपने उच्च अधिकारी को करना चाहता है और ऐसा लिखित में देने से डरता भी है यही बात औपचारिक रूप से बातों–बातों में अपने उच्च अधिकारी तक पहुचाई जा सकती।

अनौपचारिक सन्देशवाहन को अंगूरीलता सन्देशवाहन भी कहा जाता है। क्योंकि इसमें सूचना के आदान–प्रदान का कोई निश्चित रास्ता नहीं होता। इसके अन्तर्गत सचना एक के बाद एक अनेक लोगों से होती हुई लम्बा रास्ता पार कर जाती है और यह पता नही कि यह बात कहां से शुरू हई थी। यह बात ठीक उसी प्रकार है जैसे अंगूर की बेल । अंगूर की बेल का आदि तथा अन्त ढूंढ़ना ही मुश्किल काम है।

विशेषताएं

1. **सामाजिक सम्बंधों द्वारा स्थापना**–यह सन्देश वाहन सामाजिक सम्बंधों द्वारा उत्पन्न होते हैं यह संगठन के प्रतिबन्धों से बाहर हैं अधिकारी अधीनस्थों जैसा कोई सम्बन्ध इसके बीच में नहीं आता है। एक अधिकारी जितना व्यवहार कुशल होगा, वह उतनी ही अधिक सूचनाएं इस श्रृंखला द्वारा प्राप्त कर सकता है।
2. इसके द्वारा कार्य सम्बंधी तथा व्यक्ति सम्बन्धी दो प्रकार की सूचनाएं एकत्र की जा सकती हैं।
3. **अनिश्चित मार्ग**–संगठन के प्रतिबन्धों से बाहर होने के कारण इसका मार्ग निश्चित नहीं होता। यह अंगूर की बेल की भान्ति टेढ़े–मेढ़े रास्तों से होकर गुजरता है।

अनौपचारिक सन्देशवाहन के लाभ

1. **तेज तथा प्रभावपूर्ण सन्देश वाहन**–इस पद्वति में सन्देश तेजी से प्रसारित होते हैं और उनका प्रभाव भी लोगों पर अधिक आ होता है।
2. **खुला वातावरण**–अनौपचारिक सन्देशवाहन खुले वातावरण में होता है। खुले वातावरण से अभिप्राय यह है। कि यह किसी छोटे–बड़े पद का दबाव नहीं होता। लोगों की संगठन के बारे में राय को सरलता से एकत्र कर दिया जाता है।

सीमाएं

1. **अव्यवस्थित**–यह सन्देशवाहन पूर्णतः अव्यवस्थित होता है। यही कारण है कि इसमें ऐसा जरूरी नहीं है कि सूचनायें संबंधित व्यक्तियों तक पहुँच जाये।

2. **अविश्वसनीय सूचनाएं**–इस सन्देशवाहन से प्राप्त अधिकतर सूचनायें अविश्वसनीय होती हैं उनके आधार पर कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सकता।

अनौपचारिक सन्देशवाहन के प्रकार

1. मुक्त प्रवाहा सन्देशवाहन
2. घूमता हुआ सन्देशवाहन
3. श्रृंखलाबद्ध सन्देशवाहन
4. केन्द्रित सन्देशवाहन

सन्देशवाहन के माध्यम

सन्देशवाहन श्रंखला औपचारिक हो या अनौपचारिक, सन्देशवाहन की विषय–सामग्री का आदान–प्रदान करने के लिए कुछ शब्दों, चिन्हों या चित्रों की आवश्यकता पड़ती है जिन्हे सन्देशवाहन का माध्यम कहा जाता है। इनका प्रयोग अलग–अलग हो सकता है या एक माध्यम की सहायता के लिए एक दूसरे माध्यम का प्रयोग किया जाता है। जैसे एक बात को शब्दा द्वारा मौखिक रूप में कहा जा सकता है तथा इसी बात को लिखित रूप में कछ चिन्हों या चित्रों के द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सन्देशवाहन को माध्यमों को दो भागों में बाटा जा सकता है–मौखिक, लिखित ।

1. **मौखिक सन्देशवाहन**

बातचीत द्वारा या मुख से बोलकर किसी सचना को अन्य व्यक्तियों तक पहंचाने को मौखिक सन्देशवाहन का सन्देशवाहन दोनों पक्षो में प्रत्यक्ष बातचीत द्वारा, टेलिफोन द्वारा अन्य सूचना प्रसारण यन्त्रों के माध्यम से, चहर का या इशारे द्वारा हो सकता है। इस सन्देशवाहन के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. **धन की बचत**–इससे धन की बचत होती है क्योंकि इसमें न तो कागज, स्याही की आवश्यकता होती है न ही लिखने वाले कर्मचारी की।
2. **समय की बचत**–सन्देश लिखने से लगने वाला समय बच जाता है। जिससे यह शीध्र कर्मचारियों तक पहुंचाया जा सकता है।
3. **प्रभावशाली**–सुनने वालो पर बहुत प्रभाव डालता है क्योंकि इसके द्वारा एक प्रबन्धक के चेहरे के हावभाव द्वारा तथा इशारों द्वारा इसे रूचिपूर्ण बना सकता है।
4. **स्पष्टता**–इसके अन्तर्गत सुनने वाले अपने भ्रम के प्रश्न पूछकर दूर कर सकते है जिस कारण मौखिक सन्देशवाहन में अधिक स्पष्टता होती है।
5. **प्रतिक्रिया का ज्ञान**–जब सन्देशवाहन प्रत्यक्ष रूप से बोलकर किया जाता है तब सन्देशवाहनकर्ता सुनने वालों का चेहरा तथा हावभाव देखकर जान सकता है कि वह उसमें रूचि ले रहे हैं या नहीं तथा उन पर उसका क्या प्रभाव हो रहा है। लिखित सन्देशवाहन का प्रभाव काफी समय बाद पता चलता है।

दोष

1. **सन्देशवाहन प्राप्तकर्ता की उपास्थिति**– मौखिक सन्देश के लिए आवश्यक है कि वह व्यक्ति जिसे सन्देशवाहन करना है उपलब्ध नहीं है। यदि वह उपलब्ध नहीं है तब मौखिक सन्देशवाहन सम्भव नहीं है।

2. **खतरनाक**– मौखिक सन्देशवाहन में सन्देशवाहनकर्ता कोई गलत बात कह सकता है या ऐसी बात कह सकता है जो नहीं कहनी चाहिए। सार्वजनिक सभा में नेताओं के साथ प्रायः देखा जाता है कि जोश में आकार कुछ गलत बातें बोल देते हैं जिसका सुनने वालों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

3. **भविष्य के सन्दर्भ के लिए प्राप्ति नहीं**– भविष्य में झगड़ा खड़ा हो जाने पर मौखिक सन्देशवाहन में कोई रिकार्ड न होने के कारण यह नहीं जाना जा सकता है कि वास्तव में क्या सन्देश कर्मचारियों को दिया गया था। साथ ही कचहरी आदि में मुकदमा चलाने की हालत में उसका कोई प्रमाण नहीं होता।

4. **अपूर्ण**–मौखिक सन्देशवाहन के समय सन्देशवाहन कर्ता सभी बातों का सन्देशवाहन नहीं कर पाता तथा कुछ महत्वपूर्ण तथ्य छूट जाते हैं।

5. **तैयारी की आवश्यकता**–कई बार जब सन्देश काफी व्यक्तियों तक पहुचाना होता है तब सन्देशवाहनकर्ता को उसके लिए काफी तैयारी करनी पड़ती है जिससे मूल्यवान समय नष्ट होता है।

2. लिखित सन्देशवाहन

इसके अन्तर्गत वे सभी साधन आते है जो लिखित होते है। इनमें नोटिस, पत्रिकाएं, समाचार, बुलेटिन आदि जैसे पुस्तक, वार्षिक रिर्पोट आदि सभी आ जाते हैं। इनकी सहायता से प्रबन्धक कर्मचारी तक व कर्मचारी प्रबन्धक तक प्रभावपूर्ण ढंग से सूचना पहुँचा सकते है। प्रबन्धकों ने लिखित सन्देशवाहन की तरफ और अधिक ध्यान देना शुरू कर दिया है तथा वे लिखित सन्देशवाहन के प्रभावशाली तथा नवीन माध्यमों का विकास कर रहे हैं। इस पर इतना अधिक ध्यान देने का मुख्य कारण यह है कि इसकी सहायता से सूचनाओं को बहुत ही विस्तृत, स्पष्ट तथा आकर्षक रूप में सम्बंधित व्यक्तियों तक पहुँचाया जा सकता है। इसमें सूचनाओं व सन्देश को स्पष्ट करने के लिए चार्ट, ग्राफ तथा चित्रों का प्रयोग किया जा सकता है जिसका सन्देश प्राप्तकर्ता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। लिखित सन्देशवाहन से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैंः

1. **पूर्णतया** – लिखित सन्देशवाहन बहत ही सोच समझकर लिखा जाता है। इसमें सभी आवश्यक बाते आ जाती हैं।

2. **सही** – इसमें संदेश को बहुत ही ध्यान तथा सार्थकता से तैयार किया जाता है तथा जारी करने से पहले उसकी जांच हजिस कारण उसमें गलती होने की सम्भावना नहीं रहती जबकि मौखिक सन्देशवाहन में गलत बात कही जा सकती है।

3. **स्पष्टता**–लिखित सन्देश को बहुत ही सार्थकता से तैयार करने के कारण तथा इसमें सरल भाषा का व उदाहरणों का प्रयोग होने के कारण इसमें स्पष्टता आ जाती है।

4. **सक्षिप्तता**–मौखिक सन्देश के अन्तर्गत प्रबंधन अनावश्यक बाते कह जाते है तथा उसे बहुत ही विस्तृत बना देते है न लिखित में केवल आवश्यक तथ्य ही काम में आते हैं। इसमें पढ़ने वाले पर विशेष प्रभाव पड़ने के साथ–साथ उसके सन्देश पढ़ने के प्रति रूचि बनी रहती है।

5. **प्रत्यक्ष सम्पर्क अनावश्यक**–मौखिक सन्देशवाहन में जब सन्देश बोला जाता है तब जिनको वह पहुंचाना होता है उनकी व्यक्तिगत सम्पर्क की आवश्यकता पडती है। जबकि लिखित सन्देशवाहन में ऐसी आवश्यकता नहीं होती पश लिखकर सम्बान्धित व्यक्तियों के पास पहँचा देते है जिसे वह समय मिलने पर पढ़ सकते हैं।

लिखित सन्देशवाहन के दोष

1. **अधिक समय**–मौखिक सन्देश वाहन में सन्देश तुरन्त बोलकर व्यक्तियों तक पहुंचाया जा सकता है जबकि लिखित सन्देश को लिखने में उस पर सम्बांधित अधिकारियों के हस्ताक्षरण करवाने में तथा सम्बांधित व्यक्तियों तक पहुंचने में का समय लगता है।

2. **गोपनीयता का अभाव**–मौखिक सन्देशवाहन में सन्देश प्रबन्धक तथा सम्बन्धित कर्मचारी के बीच गोपनीय रहता है। लिखित सन्देशवाहन लिपि को टाइपिस्टों तथा उससे सम्बन्धित कर्मचारियों तक पहुचाने वाले कर्मचारी सभी को उसका पता चलता है। अत्यधिक सावधानी के बावजूद भी वह सन्देश गोपनीय नहीं रहता।

3. **खर्चीला**–यदि सन्देश ऐसा है जो मौखिक रूप से सम्बन्धित व्यक्ति तक पहुचाया जा सकता है तो उसे लिखित रूप में पहुचाने के लिए उस पर अनावश्यक व्यय आता है। कागज, स्याही या टाइप पर आने वाले व्यय को अतिरिक्त टाइप करने वाले या लिखने वाले कर्मचारी की तनख्याह के रूप में काफी व्यय आता है। साथ ही लिखित सन्देश की एक प्रति सुरक्षित रखने का व्यय भी संस्था को उठना पड़ता है।

4. **आपातकाल में अनुपयुक्त**–लिखित सन्देशवाहन में काफी समय लगता है जिस कारण आपातकाल में जबकि कोई सूचना किसी व्यक्ति तक तुरन्त पहुंचानी हो लिखित सन्देश वाहन प्रयोग में नही लाया जा सकता है।

प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन के आवश्यक तत्व

संदेशवाहन की कार्यकुशलता केवल समाचारों के आदान प्रदान पर ही निर्भर नहीं है बल्कि यह देखना चाहिए कि इससे प्राप्त कर्ता पर क्या प्रभाव पड़ा। जिस उद्देश्य से संदेश किसी व्यक्ति को दिया जाता है वह उद्देश्य यदि पूर्ण हो जाता है तो इसे कार्यकुशल संदेशवाहन कहेंगे। सन्देशवाहन को कार्यकुशल बनाने के लिए निम्नलिखित तत्वों अथवा सिद्धान्तों पर ध्यान देना आवश्यक हैं–

1. **स्पष्टता का सिद्धान्त**–सन्देशवाहन की सफलता काफी सीमा तक इस बात पर निर्भर है कि संदेश बिल्कुल स्पष्ट हो, संक्षिप्त हो, व अर्थपूर्ण हो। स्पष्टता के लिए सूचनाकर्ता को स्वयं सम्पूर्ण सन्देश का ज्ञान होना चाहिए। यदि सन्देश लिखित हो तो साफ–साफ लिखा होना चाहिए अथवा टाइप किया हुआ होना चाहिए। संदेश में ऐसे शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जिनके विभिन्न अर्थ न निकलें और कम–से–कम शब्दों में संदेश देना चाहिए।

2. **शिष्टता एवं शालीनता का सिद्धान्त**–संदेश को प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सन्देश शिष्ट, मधुर एव शालीन हो । साथ ही मधुरता के साथ–साथ सन्देश में प्रभाव ही होना चाहिए, नहीं तो इसका अर्थ कमजोरी में लगा लिया जाता है। जैसे– यदि कोई कर्मचारी देर से फैक्ट्री आता है तो उसको मथुर भाषा के साथ कठोर वचन भी कहने चाहिए।

3. **आदर्श व्यवहार का सिद्धान्त**–सभी विवेकशील व्यक्ति यह चाहते हैं कि उनके आदेश का कर्मचारी पूरी तरह पालन कर। इसके लिए प्रबन्धकों को स्वयं का आदेश बनाना पड़ेगा और सबसे पहले अपने को नियमों पर चलाना चाहिए जो नियम दूसरों के लिए बनाए गए हैं। जैसें जब हम चाहते हैं कि प्रत्येक को समय पर कार्यालय पहचाना चाहिए तो यदि प्रबन्य स्वयं समय पर कार्यलय नहीं पहुंचेगे तो वे दूसरों के सामने क्या आदर्श उपस्थित करेंगे।

4. **पारस्परिक सहयाग का सिद्धान्त**–सन्देशवाहन की सफलता के लिए प्रमख विशेषता यह है कि सन्देशवाहन दोनो पक्षों अर्थात सूचना देने वाले व प्राप्त करने वाले को मध्य पूर्ण सहयोग हो। यदि सूचना देने वाला

सूचना दे दे किन्तु पाने वाला उसे टाल दें तो सदेशवाहन सफल नहीं कहा जाएगा। इस हेतु यह आवश्यक है कि दोनों पक्षकारा का माग के सामान्य सिद्धान्तों की पूर्ण जानकारी हो जिससे दोनों पक्षों में घनिष्ट समन्वय हो।

5. **समुचित सम्प्रेषण विधि**–सन्देश की भाषा मधुर होने के बावजूद यदि प्राप्तकर्ता तक न पहुंचे तो सन्देशवाहन व्यर्थ है। अतः सूचनाकतों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसे क्या कहना है, किससे कहना है, कब कहना है तथा कैसे कहना है। इन पहलुओं पर पूर्व नियोजन के बिना सन्देशवाहन सफल नहीं हो सकता।

6. **सन्देशवाहन निरन्तर हो**–सन्देशवाहन कशल होने के लिए यह आवश्यक है कि वह सम्बिन्धित पक्षों के बीच निर्बाध गति से निरन्तर चालू रहना चाहिए जिससे निरन्तर विचारों के आदान–प्रदान का लाभ प्राप्त हो सका

7. **समयानुकूलता का सिद्धात**–प्रभावी संदेश के लिए आवश्यक है कि संदेश उचित समय पर दिया जाये । यदि उचित समय पर सन्देश नहीं दिया जायेगा तो सही निर्णय नहीं लिए जा सकेंगे।

8. **अनौपचारिकता का सिद्धात**–सन्देश निम्न स्तर तक प्रत्येक कर्मचारी तक पहंचे इसके लिये आवश्यक नहीं है कि वह औपचारिक रूप से यानी विभागाध्यओं के द्वारा ही नीचे तक पहंचे। यदि किन्ही परिस्थितियों में अनौपचारिक संदेशवाहन अधिक प्रभावपूर्ण हो सकता है तो इसका प्रयोग करना चाहिए।

सम्प्रेषण की बाधायें

सम्प्रेषण का प्रमुख उद्देश्य किसी व्यक्ति अथवा समूह को किसी संवाद का अर्थ बोध कराके प्रभावित करना है परन्तु कभी–कभी ऐसा होता कि संवाददाता और संवाद प्राप्तकर्ता संवाद को भिन्न–भिन्न रूप में समझ लेते हैं और सम्प्रेषण के इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में संवाद प्राप्तकर्ता संवाद को समझने और उसके अनुसार कार्य करने में अपने को असमर्थ पाता है।

प्रो. थियों हैमन ने सम्प्रेषण की बाधाओं की निम्न चार भागों में विभक्त किया हैः–

1. संगठनात्मक संरचना सम्बन्धी बाधायें
2. स्थिति एवं पद सम्बन्धी बाधायें
3. भाषा सम्बन्धी बाधायें एवं
4. परिवर्तन सम्बन्धी बाधायें।

मैक्फारलेण्ड के अनुसार सम्प्रेषण की मुख्य बाधायें निम्न हैंः

1. दोषपूर्ण या विकृत उद्देश्य
2. संगठनात्मक अवरोध
3. भाषा अवराध, एवं
4. मानवीय सम्बन्ध समस्या।

कीथ डेविस के अनुसार सम्प्रेषण की तीन प्रमुख बाधायें हैंः

1. भौतिक बाधायें

2. व्यक्तिगत, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक बाधायें एवं

3. भाषा सम्बन्धी बाधायें

सक्षेप में सम्प्रेषण की कुछ प्रमुख बाधायें निम्न हैं:

1. **दोषपूर्ण अभिव्यक्ति**–भाषा अभिव्यक्ति का आधार है और यदि वह दोषपूर्ण एवं द्विअर्थी है तो समझ पैदा करना सम्भव नहीं होगा। यह भाषा लिखित, मौखिक एवं सांकेतिक हो सकती हैं। यदि एक शब्द, चिन्ह, हाव–भाव, मुद्रा अलग–अलग व्यक्तियों के लिए अलग–अलग अर्थ रखती है। तो सम्प्रेषण अर्थहीन बन जायेगा।

2. **घटिया सुनना एवं स्मरण**–सनना एक दर्लभ गण है और प्रत्येक व्यक्ति अच्छा श्रोता नहीं होता है। यदि श्रोता ही अपना राय बना लेता है, ध्यान लगाकर नहीं सुनता है, केवल अपने हित की बात सुनता है तथा सहानभरि कारण सुनता है तो वह प्रेषक के विचारों एवं भावनाओं को नहीं समझ पायेगा । परिणामस्वरूप सम्प्रेषण अर्थहीन होत इसा प्रकार घटिया स्मरण शक्ति भी सम्प्रेषण में एक महत्वपूर्ण बाधा है। यदि सम्प्रेषण मौखिक है तो यह बाधा खतरनाक है क्योंकि अनुसंधान इस बात को पृष्ट करते है कि एक व्यक्ति ने जो कहा दूसरा व्यक्ति उसका 60–70 प्रतिशत ही स्मरण रख पाता है।

3. **संदेश का छानना**–सम्प्रेषण में संदेश को तोडने–मरोड़ने की समस्या बहुत आम है और यदि एक संदेश को या व्यक्तियों के माध्यम से गुजरना पडे तो यह समस्या और अधिक नुकसानदायक बन जाती है। प्रत्येक व्यक्ति का अपने दृष्टिकोण से अवलोकन एवं मूल्यांकन करता है और उनमें केवल उस संदेश को आगे भेजने की प्रवृति पाई जाती है जो उनके हित में हो। परिणामस्वरूप संदेश का विरूपण हो जाता है कई बार तो उनका अर्थ ही बदल जाता है।

4. **स्थिति एवं पद**–सम्प्रेषण करने वाले कर्मचारियों की स्थिति एवं पदों में अन्तर हो सकता है। यह अन्तर सम्प्रेषण प्रभावी होने से रोकता है। उच्च पदों पर पदासीन व्यक्ति कई प्रकार के सम्प्रेषण को अपने पद एवं प्रतिष्ठा के अन नहीं मानते। इसी प्रकार अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारियों को अपनी बात कहने से हिचकते हैं या डरते हैं।

5. **अविश्वास एवं भय**–कर्मचारियों के मध्य अविश्वास एवं भय का वातावरण सम्प्रेषण को अर्थहीन बनाता है। यदि कर्मचारी एक–दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखें तो सत्य सुझाव देने से डरें तो सम्प्रेषण प्रभावशाली बनाया जाना सम्भव नहीं होगा।

6. **परिवर्तन का विरोध**–सम्प्रेषण का प्रमुख उदेदृश्य अपेक्षित परिवर्तन लाना होता है। यदि सम्प्रेषण करने वालों में परिवर्तन का विरोध करने की प्रवृति है तो सम्प्रेषण उपयुक्त समझ पैदा नहीं कर सकेगा।

7. **सम्प्रेषण का अतिभार**–कभी–कभी प्रबन्धन इस मान्यता पर कार्य करते हैं कि अधिक सम्प्रेषण ही बेहतर सम्प्रेषण है। इसके अन्तर्गत व्यक्तियों को इतनी सूचनाएं प्रदान की जाती है कि वे सूचनाओं के भार से दब जायें । परिणामस्वरूप सम्प्रेषण अतिभार पैदा होता है। यह अतिभार कई कारणों से पैदा हो सकता है जैसे वे कुछ सूचनाओं को पसंद नहीं करते, वे कुछ सूचनाओं से बचना चाहते हैं, उन पर सूचनाओं का बोझ अत्याधिक है। इस अतिभार से सूचनाओं के विश्लेषण में देरी होती है, गलतियाँ अधिक होती है तथा वे सभी पर समुचित ध्यान नहीं दे पाते हैं। परिणामस्वरूप उनमें समझ पैदा नहीं हो पाती है।

8. **योग्यता का अभाव**–यदि प्रेषक एवं प्राप्तकर्ता में ऐसी योग्यताओं का अभाव है जिनसे सम्प्रेषक को उपयोगी बनाया जा सके तो सम्प्रेषण अर्थपूर्ण नहीं रहेगा।

9. **संगठन संरचना**–यदि उपक्रम की संगठन संरचना जटिल है, अनेक स्तरों वाली है तथा विस्तृत है तो विभिन्न स्तरों पर कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच की दूरी बढ़ जायेगी। इससे सम्प्रेषण अव्यक्तिगत अधिक हो जायेगा और सूचनाओं के हस्तान्तरण में दोष उत्पन्न होगा।

बाधाओं को दूर करने हेतू सुझाव

सन्देशवाहन के मार्ग में अनेक बाधाएं है। इन बाधाओं का यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जा सकता है कि उन्हे दूर नहीं किया जा सकता। यदि प्रबन्धक सभी का सहयोग लेकर निष्ठा से प्रत्यन्नक करे तो सन्देशवाहन को इन बाधाओं को निश्चित रूप से दूर किया जा सकता है। सन्देशवाहन की बाधाओं को दूर करने के लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैः

1. **सन्देशवाहन भेजना**–इन बाधाओं को दूर करने के लिए सर्वप्रथम हमें सन्देशवाहन का कार्य एक निश्चित योजना के अनुसार बनाना चाहिए। योजनाबद्ध सन्देशवाहन से एक ओर जहां उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य सूचनाओं का आदान–प्रदान सुगम हो जायेगा वही दूसरी ओर अधीनस्थ सही समय पर सूचनाएं प्राप्त करने से कार्य को सफलतापूर्वक करने में सक्षम होगें साथ ही सूचनाओं की प्राप्ति में होने वाले अतिरिक्त समय की भी बचत सम्भव होगी।

2. **सरल भाषा**–भाषा सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने के लिए निम्न सुझाव सहायक सिद्ध होगे–

   1. सन्देशवाहन में ऐसी भाषा प्रयोग की जाए जिसे सरलता से समझा जा सके।
   2. तकनीकी भाषा का प्रयोग न किया जाए जिसे सन्देश प्राप्तकर्ता समझ न सके।
   3. कभी भी बहुअर्थीय शब्दों का चयन नहीं किया जाना चाहिए।

3. **प्रत्यक्ष सम्पर्क**–यथासम्भव इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि सन्देश देने वाले और सन्देश पाने वाले के माध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क की व्यवस्था की जाए। इसके लिए संस्था में निम्न उपाय किए जा सकते हैं :–

   i. संस्था में सूचना सहायक अधिकारी नियुक्त करना
   ii. संस्था में प्रबन्ध स्तरों की यथासम्भव कमी करना
   iii. नियत्रंण क्षमता को व्यापक बनाना
   iv. यथासम्भव विकेन्द्रीकरण को बढावा देना।

4. **पारस्परिक सदभाव एवं विश्वास**–सन्देशवाहन की बाधाओं को दर करने में सन्देश देने वाले और पान वाला पारस्परिक सदभाव एवं विश्वास की भावना उत्पन्न करना है। पारस्परिक अविश्वास एक–दूसरे को आवश्यक सूप प्रदान करने स्वीकार करने और समझने में बाधा उत्पन्न करती है। व्यवसायिक उपक्रम में पारस्परिक सद्भाव एव परमार का वातावरण पैदा करने का दायित्व उच्च अधिकारियों का होता है। पारस्परिक विश्वास से सन्देश देने का औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही व्यवस्थाएं सफल हो सकती है।

5. **पदोन्नति नीति**–पदोन्नति की आकांशा से अधीनस्थ अपने अधिकारियों के सम्मुख सही एवं निष्पक्ष बात प्रस्तुत नहीं करते। सदैव वे वही बात करते हैं जिससे उनके अधिकारी खुश हो और यथासम्भव जल्द से जल्द पदोन्नति दें। अतः इस बाधा को दूर करने के लिए संगठन में आवश्यक है। आदर्श पदोन्नति सम्बन्धी नियम एवं उपनियम बनाए जाये तथा उनका नेकनीति एवं कठोरता के साथ पालन किया जाए। निष्पक्ष पदोन्नति के लिए यह आवश्यक है कि पदोन्नति का आधार योग्यता, अनुभव, परिश्रम एवं कर्तव्यनिष्ठा हो। कामचोर व्यक्तियों की पदोन्नति के लिए योग्यता, अनुभव एव कर्तव्य निष्ठा को ओझल नहीं किया जाना चाहिए।

6. **यथासम्भव सन्देशवाहन**–इसमें बाधा इसलिए भी जन्म लेती है कि संवाददाता द्वारा संदेश का प्रेषण ठीक समय पर नहीं किया जा सकता। इसकी सफलता के लिए जरूरी है कि संदेश प्राप्त करने वाले को सन्देश सही समय पर दिया जाए। के समय से पूर्व या बाद में दिया सन्देश महत्व नहीं रखता।

7. **सुनने की आदत का विकास**–इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संस्था के अधीनस्थों में सन्देशों को सुनने की आदत का विकास किया जाए, जिससे वे सन्देश को भली प्रकार सुनकर तथा समझकर ही निर्णय ले। पूरा सन्देश – सुनने से पहले ही अपना निर्णय ले ऐसा न हो । यदि सुनने सम्बंधी कोई कमी या बाधा हो तो उसे दूर करने के लिए उपयुक्त यंत्रों की सहायता ली जानी चाहिए।

संचार–व्यवस्था का महत्व

संस्था में संदेशवाहन के महत्व को निम्न तत्वों से जाना जा सकता हैः

1. **शीघ्र निर्णय एवं क्रियान्वयन**–निर्णय लेने में देरी करने से और समस्याओं को टालते रहने से व्यवसाय में असन्तोष का वातावरण उत्पन्न हो सकता है। अतः एक संगठित तथा व्यवस्थित सन्देशवाहन प्रणाली, व्यवसाय के वातावरण में मधरता तथा स्वस्थ बनाने में सहायक होती है। एक व्यवस्थित सन्देश वाहन पद्धति से विचार–विमर्श शीध्रगामी और सुगम हो जाता है।

2. **कार्य सम्बन्धी सूचनाएं पहुंचाना तथा सहयोग प्राप्त करना**–प्रत्येक कार्य को करने के लिए पर्याप्त सूचनाओं की आवश्यकता होती है। कार्य कब शुरू करना है। कैसे और कहाँ करना है? कहाँ से इनके लिए सहायता प्राप्त होगी आदि सचनामों की जानकारी कर्मचारियों के लिए आवश्यक होती है। इनमें देरी होने से कार्य रूक जाता है। कार्यकुशल सन्देश वाहन की सहायता से यह सूचनाएं समय पर तथा प्रभावी ढंग से कर्मचारियों को पहुंचाई जा सकती हैं।

3. **प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि**–प्रबन्धक को व्यक्तियों से व्यवहार करना पड़ता है तथा कार्य एवं कर्तव्यों के बीच निर्देश देने पड़ते हैं। सहायकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उन्हें नीतियों तथा उद्देश्य बताने होते हैं। में प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि के लिए प्रभावी संदेश–वाहन या संचार व्यवस्था सहायक होती है।

4. **लोक सम्पर्क**–एक औद्योगिक संस्था की सफलता समाज की सहायता पर निर्भर होता है, इसलिए जनता को बारे में जानकारी देकर संस्था के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जा सकता है। यह सूचनाएं संस्था के लिए समाज में अनुकूल वातावरण तैयार करने के साथ–साथ संस्था के लिए अच्छे कर्मचारियों का प्राप्ति, ग्राहकों की संत अशधारियों के विश्वास को बढाती है। इस सबके लिए कुशल संदेशवाहन का प्रभावशाली होना आवश्यक है।

5. **आंकड़ों का संग्रह**–प्रबन्धकों को समय–समय पर योजनाएं बनाने तथा संस्था की महत्वपूर्ण समस्याओं को सुलझाने के लिए विभिन्न प्रकार के आंकड़ों की आवश्यकता होती है, जो सरकारी कार्यालयो, उपभाक्ताआ, व्यापारियों से प्राप्त कर होते हैं। किसी भी संस्था या व्यक्ति को ऐसी सचनाएं देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इसलिए कुशल सन्देश द्वारा उसमें सहयोग की भावना उत्पन करके ही तथ्य प्राप्त किये जा सकते हैं।

6. **शान्ति की व्यवस्था**–प्रबन्धकों को समय–समय पर योजनाएं बनाने तथा संस्था की महत्वपर्ण समस्या के लिए विभिन्न प्रकार के आंकड़ों की आवश्यकता होती है जो सरकारी कार्यालयों, उपभोक्ताओं, व्यापारियों से। करने होते हैं। किसी भी संस्था या व्यक्ति को ऐसी सूचनाएं देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। इसलिए कर सन्देशवाहन द्वारा उसमें सहयोग की भावना उत्पन्न करके ही तय किये जा सकते हैं।

7. **समन्वय**–श्रम–विभाजन तथा विशिष्टीकरण के सिद्धान्तों को उद्योग पर लागू करने के परिणामस्वरूप उत्पादन कर, विभागा तथा उपविभागों में होने लगा है, जिस कारण उनमें समन्वय कायम करने की समस्या उत्पन्न हो गई है। कायम करने के लिए समय–समय पर इन सभी विभागों तथा उपविभागों के प्रबन्धकों की सभा बुलाई जाती है । सभा कार्यो की गति तथा समय निर्धारित किया जाता है तथा सम्बन्धित आदेश उन व्यक्तियों तक पहंचाए जाते है। वास्तविक कार्य कर रहे हैं। इसके लिए कुशल संदेशवाहन की आवश्यकता होती है।

8. **अधीनस्थों के सुझाव**–व्यवसाय में समय–समय पर समस्याएं उत्पन्न होती हैं । इन समस्याओं को सुलझाने का उत्तरदागिन प्रबन्धकों का होता है, जिन्हें उस समस्या के सम्बन्ध में वास्तविक तथ्य प्राप्त नहीं होते हैं । इसलिए समस्याओं को सलझाने में अधीनस्थों के सुझाव प्राप्त करना महत्वपूर्ण हो जाता है, जिसके लिए संस्था में कुशल सन्देशवाहन का होना जरूरी हैं।

9. **पद सन्तुष्टि की व्यवस्था**–प्रबन्धक क्या चाहता है और कर्मचारी क्या करते हैं, के विषय में सन्देशवाहन से प्रबन्ध तथा कर्मचारियों के बीच पारस्परिक विश्वास, प्रेम तथा सहयोग उत्पन्न होता है। प्रबन्धक जैसा कार्य चाहता था उसी के अनुसार कार्य, कर्मचारी द्वारा करने पर उसे अपने कार्य से संतुष्टि मिलती है और प्रबंध तथा कर्मचारी के बीच किसी प्रकार की गलतफहमी नहीं होती है। अतः प्रभावी सन्देशवाहन कर्मचारी को पद के प्रति सन्तुष्टि देता है तथा कार्य के प्रति रूचि एवं उत्साह बढ़ाता है।

10. **नेतृत्व क्रिया का आधार**–नेता एवं उसके अनुयायियों के बीच प्रभावी सन्देशवाहन का होना आवश्यक है। अपने विचारों, सुझावों तथा निर्णयों को नेता अपने अनुयायियों तक सन्देशवाहन की व्यवस्था से ही अपने प्रभाव का प्रयोग कर सकता है। अनुयायी भी अपने अनुभव, सुझाव, प्रवृति तथा समस्याओं को अपने नेता सन्देशवाहन के माध्यम से पहुंचा सकते हैं। इस प्रकार प्रभावी एवं स्पष्ट सन्देशवाहन ही नेतृत्व की प्रभावशीलता निर्धारित करता है।

सारांश

1. **संचार का अर्थ** : संचार तथ्यों, विचारों, भावनाओं आदि को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में स्थानांतरित करने और उसे समझने की कला है।
2. **सन्देशवाहन की विशेषताएं:** (i) दो या दो से अधिक व्यक्ति, (ii) विचारों का आदान– प्रदान, (iii) पारस्परिक समझ, (iv) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संचार, (v) सतत प्रक्रिया, (vi) शब्दों का प्रयोग और साथ ही प्रतीकों।
3. **सम्प्रेषण प्रक्रिया** : सम्प्रेषण की प्रक्रिया प्रेषक, संदेश एवं प्राप्तकर्ता के संयोजन से बनी है। इसे चित्र संख्या निम्न के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।
4. **औपचारिक संचार:** यह उन विचारों और सूचनाओं के आदान प्रदान को संदर्भित करता है जो आपसी समझ बनाने के लिए योजनाबद्ध संगठनात्मक संरचना के तहत किया जाता है।
5. **औपचारिक संचार के प्रकार** : (i) नीचे की ओर सन्देश वाहन (ii) ऊपर की ओर अथवा उर्ध्वमुखी संदेशवाहन (iii) समतल सन्देश वाहन
6 **अनौपचारिक संचार:** यह अनौपचारिक संचार को संदर्भित करता है जो विभिन्न लोगों और समूहों के बीच होता है।
7 **अनौपचारिक संचार के प्रकार** : (i) मुक्त प्रवाहा सन्देशवाहन (ii) घूमता हुआ सन्देशवाहन (iii) श्रृंखलाबद्ध सन्देशवाहन (iv) केन्द्रित सन्देशवाहन
8. **प्रभावपूर्ण सन्देशवाहन के आवश्यक तत्व:** सन्देशवाहन को कार्यकुशल बनाने के लिए निम्नलिखित तत्वों अथवा सिद्धान्तों पर ध्यान देना आवश्यक हैं– i) स्पष्टता का सिद्धान्त ii) शिष्टता एवं शालीनता का सिद्धान्त

iii) आदर्श व्यवहार का सिद्धान्त iv) पारस्परिक सहया का सिद्धान्त v) समुचित सम्प्रेषण विधि vi) सन्देशवाहन निरन्तर हो vii) समयानकलता का सिंद्धात viii) अनौपचारिकता का सिंद्धात

9. सन्देशवाहन में बाधाएं: i) दोषपूर्ण अभिव्यक्ति ii) घटिया सुनना एवं स्मरण iii) संदेश का छानना iv) स्थिति एवं पद v) अविश्वास एवं भय vi) परिवर्तन का विरोध vii) सम्प्रेषण का अतिभार viii) योग्यता का अभाव ix) संगठन संरचना

10. सन्देशवाहन में बाधा को दूर करने के लिए कदमः i) सन्देशवाहन भेजना ii) सरल भाषा iii) प्रत्यक्ष सम्पर्क iv) पारस्परिक सदभाव एवं विश्वास v) पदोन्नति नीति vi) यथासम्भव सन्देशवाहन vii) सुनने की आदत का विकास

अभ्यास

लघु प्रश्न

1. ''प्रबंधकीय कार्य संचार की एक कुशल प्रणाली के बिना नहीं किया जा सकता है।'' क्या आप कथन से सहमत हैं?
2. औपचारिक संचार के प्रकार बताएं।
3. औपचारिक संचार के किसी भी तीन फायदे के बारे में विस्तार से बताएं।
4. ग्रेपवाइन का क्या अर्थ है?
5. संक्षिप्त संचार के लिए किसी भी तीन बाधाओं की व्याख्या करें?
6. प्रभावी संचार के लिए बाधाओं को दूर करने के लिए किसी भी तीन उपायों की संक्षिप्त व्याख्या करें।
7. संचार के लिए किसी भी तीन व्यक्तिगत बाधाओं को बताएं।
8. मौखिक संचार क्या है?
9. संचार की बाधाओं को दूर करने के लिए कोई तीन सुझाव दें।
10. औपचारिक संचार की संक्षिप्त व्याख्या करें।

दीर्घ प्रश्नः

1. संक्षेप में संचार की बाधाओं को समझाइए। एक प्रभावी संचार के सिद्धांत क्या हैं?
2. किसी संगठन में संचार की सामान्य बाधाएँ क्या हैं और इनपर कैसे काबू पाया जा सकता है?
3. संचार की प्रक्रिया पर चर्चा करें। बताइए इसे कैसे प्रभावी बनाया जा सकता है?
4. ''संचार व्यवसाय के लिए उतना ही आवश्यक है जितना किसी व्यक्ति के लिए रक्त प्रवाह।'' चर्चा करें।

5 संचार के विभिन्न माध्यमों के बारे में बताएं जो आमतौर पर एक आधुनिक व्यापारिक संगठन में उपयोग किए जाते हैं।

6. अच्छा संचार ध्वनि प्रबंधन की नींव है इस कथन पर चर्चा करें और प्रभावी संचार के सिद्धांतों की व्याख्या करें।
7. औपचारिक संचार का मूल्यांकन करें और औपचारिक संचार के प्रकार को उजागर करें।

Unit–III

नियंत्रण

(Control)

अध्याय का उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य आपको नियंत्रण के बारे में विस्तृत समझ प्रदान करना है। इस अध्याय को पढ़ने के बाद छात्र पाठक निम्नलिखित को समझने में सक्षम होंगे।

1 नियंत्रण की परिभाषायें
2 नियंत्रण की विशेषताएं
3 नियंत्रण के लाभ
4 नियंत्रण प्रक्रिया
5 नियंत्रण की विधियाँ
6 नियन्त्रण के सिद्धान्त

नियंत्रण के अंतर्गत किसी संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जाने वाली योजनाए ठीक ढंग से कार्यान्वित की जा रही हैं या नहीं, की जानकारी करना तथा यदि योजनाएं ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर रही हैं तो उसमें आने वाली बाधाओं का पता लगाना तथा उनके समाधान का प्रयत्न करना आदि सम्मिलित होता है।

आधुनिक प्रबंधकों की यह विचारधारा कि 'नियंत्रण' का आशय अधीनस्थों पर अधिकार जमाना नहीं है अपितु नियंत्रण वह साधन है जिसके द्वारा निश्चित उददेश्यों के लिए कार्य करने वाले अधीनस्थों को निर्देशन और दिग्दर्शन किया जाता है।

नियंत्रण की परिभाषायें

नियंत्रण की परिभाषायें विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न ढंग से परिभाषित की है उनमें से प्रमख परिभाषायें निम्नलिखित हैं :–

1. **बिली ई. गोज** के अनुसार, ''प्रबंधकीय नियोजन से आशय कार्यक्रम को ससंगत, एकीकृत और सतुष्ट बनाने से है, जबकि नियंत्रण घटनाओं को योजनाओं के अनुरूप बनाने का प्रयास करता है।''
2. **मेरी कुशिंग नाइल्स** के अनुसार, ''नियंत्रण किसी निश्चित लक्ष्य का, लक्ष्यों के समूह की ओर निर्देशित क्रियाओं में संतुलन बनाए रखना है।''
3. **जार्ज आर. टैरी** के शब्दों में, ''नियंत्रण का तात्पर्य यह निश्चित करना है कि क्या किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में कार्यो का मूल्यांकन करना और आवश्यकता पड़ने पर संशोधनात्मक प्रयासों का काम लेना है जिससे कि योजनाबद्ध निष्पादन हो सके।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नियन्त्रण प्रबन्ध का वह कार्य है जो योजना के अनुसार कार्य निष्पादन को सम्भव बनाता है। ऐसा करने के लिए नियन्त्रण के अन्तर्गत समय–समय पर वास्तविक एवं इच्छित कार्य प्रगति की तुलना करके विचलनों का पता लगाया जाता है और इससे पहले की विपरीत परिणाम सामने आएं कमियां को दूर करने के लिए सुविधा का कार्यवाही की जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नियंत्रण का प्रबन्धकीय कार्य है जो वास्तविक परिणामों को निकट लाने का प्रयास करता है।

नियंत्रण की विशेषताएं

1. **नियंत्रण एक आधारभूत कार्य है**–प्रबन्ध के अनेक कार्य हैं, जैसे–नियोजन, संगठन नियुक्तियां, नेतृत्व कला तथा नियंत्रण। इन सभी में से नियंत्रण की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके बिना बाकी सब बेकार हो जाएगा। क्योंकि नियंत्रण के अभाव में हम यह नहीं जान पाएंगे कि किस योजना से हम क्या करना चाहते हैं और उसमें क्या हो रहा है। ऐसी भ्रमपूर्ण स्थिति में सफलता की इच्छा करना मात्र एक स्वप्न ही है। अतः नियंत्रण का प्रथम लक्ष्य इसका एक मुख्य प्रबंधकीय कार्य होना है।

2. **प्रत्येक प्रबंधक का अनिवार्य कार्य**–नियंत्रण का दूसरा लक्षण इसका सभी प्रबंधकीय स्तरों पर संपन्न किया जाना है। यह प्रबंध का ऐसा कार्य है जिसमें हर स्तर का प्रबंधक यह विश्वास दिलाता है कि वास्तविक प्रगति निर्धारित योजनामा के अनुरूप है। विभिन्न स्तरों पर नियंत्रण के उद्देश्यों में अंतर हो सकता है जैसे–उच्चस्तरीय प्रबंधक प्रशासकीय करते हैं जो योजनाओं, नीतियों आदि पर आधारित है तथा इनको नियंत्रण की आवश्यकता विशेष परिस्थितियों में ही पड़ती है। मध्यस्तरीय प्रबंधकों की नियंत्रण की समस्या नीतियों को वास्तविकता में बदलने से संबंधिति होती है जबकि निम्नस्तरीय प्रबंधकों की नियंत्रण समस्या वास्तविक कार्य संचालन से संबंधित है।

3. **नियंत्रण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है**–नियंत्रण का अभिप्राय किसी ऐसी क्रिया से नहीं है जिसे केवल एक ही बार किया जाता हो अथवा एक लम्बे समय बाद दोहराया जाता हो, बल्कि इसकी आवश्यकता हर समय सी के अंतर्गत प्रगति की लगातार समीक्षा करनी पड़ती है तथा बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार पर्व नतिर भी बदलना पड़ता है। इसलिए कहा जाता है कि नियंत्रण लगातार मापन करने, तुलना करने एवं जांच पड़ताल की प्रक्रिया है। जिस प्रकार एक प्राणी के लिए श्वास जरूरी है उसी प्रकार एक सस्था की आवश्यकता पड़ती है।

4. **नियंत्रण प्रबंधकीय क्रिया का प्रारंभ व अंत दोनों है–**नियंत्रण की आवश्यकता प्रबंधकीय प्रक्रिया के में ही पड़ती है। प्रबंधकीय प्रक्रिया योजना बनाने से शुरू होती है और नियंत्रण पर समाप्त होती है। न पए प्रमापों का होना जरूरी है जो कि योजनाओं में निर्धारित किए जाते हैं। इस प्रकार प्रबंधकीय प्रक्रिया, नियोजन के रूप में होता है जो कि नियंत्रण प्रक्रिया का पहला कदम भी है। दूसरी ओर, नियोजन में निर्धारित को पूरा का प्रयास करना नियंत्रण के अंतर्गत आता जो कि प्रबंधकीय क्रिया का अंतिम कदम है । अतः यह कहा है है कि नियंत्रण प्रबंधकीय क्रिया का प्रारंभ भी है और अंत भी।

5. **नियंत्रण न केवल पीछे देखना है कि आगे देखना भी**–नियंत्रण को पीछे देखने की प्रक्रिया इसलिए कहा जा क्याकि इसके अंतर्गत वास्तविक परिणामों की तलना अपेक्षित परिणामों से की जाती ह। इस आधार पर यह तथा सत्य है कि नियंत्रण पीछे देखना है। इसी प्रकार नियंत्रण के अंतर्गत जब प्राप्त एवं अपेक्षित परिणामों की तुलना विचलनों का पता लगाया जाता है और उन्हें ठीक करने के लिए सुधारात्मक कायवाहा कार्यवाही भविष्य के संदर्भ में होती है। इस आधार पर कहा जा सकता है नियंत्रण आगे की ओर भी देखता है।

6. **नियंत्रण परिणामों से संबंधित है**–नियंत्रण का संबंध परिणामों से होता है क्योंकि प्राप्त परिणामों के आधार पर ही दर अ का मूल्याकन करते हैं वह विचलनों का पता लगाकर सुधारात्मक कार्यवाही करते है।

7. **कार्यवाही नियंत्रण का सार है**–प्राप्त परिणामों में सधार की कार्यवाही करना ही नियंत्रण का सार है। केवल प्रगति का माप लेना हा नियत्रण नहीं है। एक प्रभावपूर्ण नियंत्रण व्यवस्था, समय पर ही कार्यवाही करके पूर्व निर्धारित एमा अनुसार परिणाम प्राप्ति को सरल बनाती है तथा साधनों के अपव्यय को न्यूनतम करती है। अतः कहा जा सकता है कि यदि विचलनों का पता लागने के बाद कोई कार्यवाही न की जाए तो नियंत्रण को अनुपस्थित माना जाएगा।

8. **नियंत्रण की कुंजी भारार्पण में निहित है**–एक अधिकारी अधिकारों का भारार्पण करने मात्र से ही उत्तरदायित्व मन से नहीं हो सकता, इसलिए उसे अपने अधीनस्थों की क्रियाओं पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। अतः अधिकारों के भारार्पण में ही नियंत्रण का राज छिपा हुआ है।

9. **सूचनाएं नियंत्रण की मार्गदर्शक होती हैं**–वास्तविक कार्य प्रगति के बारे में पर्याप्त सूचनाओं के समय पर उपलब्ध होने पर ही नियंत्रण कार्यवाही निर्भर करती है। सूचनाएं प्रबंधकों को यह बताती हैं कि वास्तविक कार्य और प्रमापित कार्य में कितना अंतर है और कहाँ सुधार की आवश्यकता है। इसलिए कहा जाता है कि प्रभावपूर्ण नियंत्रण के लिए प्रभावी आंतरिक सूचना व्यवस्था का होना अति आवश्यक है।

10. **नियंत्रण बल प्रयोग करना–** कर्मचारियों पर दोष लगाना या दबाव डालना नहीं है–नियंत्रण के अंतर्गत कर्मचारियों को इच्छित परिणामों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है न कि उन पर दोष लगाया जाता है अथवा उन्हें नियमों में जकडा जाता है।

नियंत्रण के लाभ

नियंत्रण एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसकी हरेक प्रबंध को आवश्यकता पड़ती है। इसके निम्नलिखित लाभ हैं:

1. **यह योजनाओं के लागू होने को सुनिश्चित करता है**–नियंत्रण के माध्यम प्रमापित एवं वास्तविक परिणामों के अंतर की जानकारी देते हुए यह स्पष्ट किया जाता है कि कार्य योजना के अनुसार हो रहा है या नहीं। यदि नहीं, तो इसके कारणों का पता लगाकर इसे सुधारा जाता है तथा नियंत्रण इसकी पुनरावृत्ति को रोकता है।

2. **यह मानवीय एवं भौतकीय साधनों के अनुकूलतम उपयोग को सुनिश्चित करता है**–नियंत्रण मानवीय व भौतिक साधनों के अनुकूलतम उपयोग को संभव बनाता है। नियंत्रण के अंतर्गत यह देखा जाता है कि कोई कर्मचारी कार्य निष्पादन में जानबूझकर देरी न करे। इसी प्रकार सभी भौतिक साधनों के उपयोग में उनकी बर्बादी को रोका जाता है।

3. **यह पर्यवेक्षण को सरल बनाता है**–नियंत्रण के अंतर्गत यह निश्चित किया जाता है कि कौन–से विलचन अधिक महत्वपूर्ण हैं ताकि केवल उन पर ही ध्यान रखा जा सके । अतः पर्यवेक्षक को सभी विचलनों पर समय खराब करने की आवश्यक मान नहीं होती व इससे पर्यवेक्षण सरल हो जाता है।

4. **यह परिवर्तनशील वातावरण से निपटने में सहायक है**–आज औद्योगिक वातावरण में लगातार परिवर्तन हो रहे हैं। ये परिवर्तन तकनीकी विकास, बढ़ती हई प्रतियोगिता, सरकारी प्रभाव, उपभोक्ता रूचि आदि के रूप में हो सकते हैं। ये सभी परिवर्तन कार्य निष्पादन को योजनाओं के अनुरूप होने से रोकते हैं। यह कार्य नियंत्रण द्वारा ही संभव है।

5. **यह समन्वय में सहायक है**–संस्थागत उददेश्यों को सफलतापक पाप्त करने के लिए संस्था के सभी विभागाप कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों में समन्वय जरूरी है। उदाहरणार्थ, संस्था के सभी विभाग एक दूसरी पर निर्भर है जैसे–विक्रय विभाग द्वारा माल के आदेशों की पूर्ति करना उत्पादन विभाग द्वारा उत्पादित माल पर निर्भर करता है। नियंत्रण के माध्यम से यह पता लगाया जाता है कि क्या उत्पादन प्राप्त आदेशों के अनुरूप ही रहा है। यदि नहीं, तो विचलन के कारणों की खोज की जाती है और सुधारात्मक कार्यवाही करके दोनों विभागों में समन्वय स्थापित किया जाता है।

6. **यह कार्यकलशता वद्धि में सहायक है**–नियंत्रण व्यवस्था परी संस्था की कार्यकशलता की वृद्धि करना है। इसके अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति की प्रगति पर लगातार निगरानी रखी जाती हैं और कमियों को अतिशीध्र दूर किया जाता है।

7. **इससे मनोवैज्ञानिक दबाव का लाभ मिलता है**– नियंत्रण संस्था में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियो पर मनोवैज्ञानिक दबाव होता है। उन्हें यह जानकारी होती है कि उनके कार्य निष्पादन की गति एवं क्वालिटी का मूल्यांकन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी पता है कि विपरीत परिणाम आने पर दंड भी दिया जा सकता है। परिणामतः ये सभी बातें उन्हें अच्छा व अधिक काम करने के लिए प्रेरित करती है।

8. **यह विकेंद्रीकरण में सहायक है**–बड़े व्यावसायिक उपक्रमों में अधिकारी का विकेंद्रीयकरण जरूरी होता है। लेकिन अधीनस्थों द्वारा अधिकारों के गलत प्रयोग का डर रहता है इसलिए प्रबंधक नियंत्रण के अभाव में ये उन्हें नहीं सोप सकता की अतः यह स्पष्ट है कि विकेंद्रीकरण जरूरी है और इसकी सफलता के लिए नियंत्रण जरूरी है।

9. **नियंत्रण निर्णय लेने में सहयोग करता है**–नियंत्रण प्रक्रिया के अंतर्गत प्राप्त विभिन्न सूचनाओं के आधार पर ही सभी स्तरों के प्रबंधकों द्वारा निर्णय लिए जाते हैं।

10. **यह लागत कम करने व किस्म सुधार में सहायक है**–नियंत्रण द्वारा उत्पादन के सभी साधनों का अनुकूलतम उपयोग संभव बनाकर लागतों में कमी और माल की किस्म में सुधार किया जाता है।

नियंत्रण प्रक्रिया

नियन्त्रण प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जिसमें काम करने के लिए उपयुक्त कार्यमान स्थापित किए जाते हैं। वास्तविक कार्य की प्रगति की तुलना पूर्व निर्धारित कार्यमानों से की जाती है तथा यदि उनमें किसी प्रकार के विचलन पाया जाता है तो उसे दूर करने के लिए सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। नियन्त्रण प्रक्रिया के निम्न चार तत्व प्रमुख रूप से माने जाते हैंः

1. **प्रमापों का निर्धारण**–नियन्त्रण प्रक्रिया का प्रथम चरण लक्ष्यों, प्रमाणों, नीतियों, योजनाओं, मान्याताओं या किसी ऐसे प्रमापों का निर्धारण करना है जिसके आधार पर किसी भी कर्मचारी के व्यवहार को नियमित एवं नियन्त्रित किया जाएगा। व्यक्तिगत ना एवं संगठनात्मक निष्पादन के मूल्यांकन हेतु प्रमापों का निर्धारण करना आवश्यक है। इन्ही प्रमापों के आधार पर वास्तविक कार्यों की तुलना की जाती है। कोई भी कार्य सही ढंग से हो रहा है अथवा नहीं, इस बात की जानकारी उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि प्रमापों का निर्धारित नहीं किया जाता है। प्रमापों के निर्धारण के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि प्रमाप बहुत ऊंचे तथा बहुत अधिक नीचे नहीं रखे जाने चाहिए। प्रमापों का निर्धारण उपक्रम के आकार लिन क्षमता आदि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। स्पष्ट रूप से प्रमापों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि ये इस प्रकार के हों जिससे एक साधारण व्यक्ति अपने प्रयासों के द्वारा इनको प्राप्त कर सकें। यदि प्रमाप सरल तथा स्पष्ट हैं तो प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य का स्वतन्त्र निर्णायक हो सकता और वह यह ज्ञात कर सकता है कि वह मोही कार्य कर रहा है वह प्रमापों के अनुरूप है या नहीं। कितने विचलनों को सहन किया जा सकता है? जैसा कि हम स्पष्ट कर चुके हैं जहाँ तक सम्भव हो, परिणात्मक आधारों पर प्रमापों का निर्धारण किया जाना चाहिए जिससे ना की मात्रा सफलतापूर्वक ज्ञात की जा सके। हम यह भी जानते हैं कि वास्तविक कार्ये तथा प्रमापों के मध्य विन आते हैं। अतः हमें उस सीमा को तय कर लेना चाहिए जिस सीमा तक विचलनों को सहन किया जा सकता विचलनों की सीमा तय करते हुए यह बात विशेष रूप से ध्यान रखनी चाहिए कि विचलनों की सीमा बना न हो और न बहुत कम हो।

2. **कार्यो का मूल्याकन करना**–नियन्त्रण प्रक्रिया का द्वितीय चरण वास्तविक कार्यों का मूल्यांकन करने से है। वास्तविक कार्यों की तुलना प्रमापों से करने के पीछे प्रमख उद्देश्य कार्य के विभाजन को ज्ञात करना है। भिन्नता प्रकृति का नियम है। वास्तविक कार्यों का ज्ञान उपक्रम की विभिन्न सूचनाओं के आधार पर किया जाता है। हमें प्रमापों से आ अलग कर देना चाहिए तथा यह देखना चाहिए कि विचलन स्वीकृत सीमा के भीतर है या नहीं। वास्तविक कार्यो तथा प्रमापित कार्यों का मूल्यांकन करते समय प्रबन्धक को उन बातों का ध्यान में रखना चाहिए जिनसे विनया बढ़ सकती है। यदि हम संगठन के इन तत्वों को सधारते हैं, तो एक तरफ विचलनों में कमी आएगी तथा दसही प्रभावी नियन्त्रण की स्थापना भी हो जाएगी जो विचलन एक सीमा के भीतर हो, उन पर प्रबन्धक ज्यादा ध्यान में भरचक नहीं है। प्रबन्धक को अपवादजनक तत्वों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए।

3. **विचलनों के कारणों को ज्ञात करना**–नियन्त्रण प्रक्रिया के अगले चरण में वास्तविक कार्य के प्रमापों के मध्य आए विचलनों के कारणों का ज्ञात किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि विचलन होने पीछे क्या कारण है। इस तथ्य का पता लगाया जाता है कि गलती योजना को बनाने में की गई है उस योजना को का कार्यरूप प्रदान कम करने में गई है। मूल्यांकनकर्ता को विचलनों के कारण, उनका प्रभाव, आकार को ध्यान में रखना चाहिए। साथ ही यह भी देखना चाहिए कि क्या मूल्यांकन के द्वारा प्रमाप में सुधार किया जा सकता है?

4. **सुधारात्मक कार्य**–नियन्त्रण प्रक्रिया का अन्तिम चरण उन सधारात्मक कार्यों से सम्बन्धित है जो वास्तविक कार्यों व प्रमापों के मध्य विचलनों के एक सीमा से अधिक होने पर किए जाते हैं । वास्तव में सुधारात्मक कार्य नियन्त्रण का सार है। सुधारात्मक कार्यों की प्रवृत्ति न केवल गलती के सुधार के सम्बन्ध में ही होनी चाहिए वरन् इस प्रवृत्ति की तरफ भी हो कि भविष्य शाक में इस प्रकार की गलतियों की पुनरावृत्ति न हो सके। प्रबन्धक सुधारात्मक कार्यों के लिए निम्न कदम उठा सकता है–

   i. कार्यों की आवश्यकता, भौतिक एवं बाह्य परिस्थितियों में इस प्रकार से सुधार करना कि प्रमानों की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाय।
   ii. शीघ्र से शीघ्र कर्मचारियों के उपयुक्त प्रशिक्षण एवं निर्देशन की व्यवस्था करना।
   iii. कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाना।
   iv. योजना लोचदान बनाए रखना जिससे उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके क्योंकि कुछ तत्व ऐसे होते हैं जिन पर मानवीय नियन्त्रण नहीं रह सकता।

नियंत्रण की विधियाँ

नियंत्रण हेतु सामान्यतः निम्न विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं:

1. **अवलोकन**–कर्मचारियों के कार्यों का प्रत्यक्ष रूप में अवलोकन करके तथा उनसे प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करके उन कार्यों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। यदि संस्था के अधिकारी कर्मचारियों के कार्य स्थल पर जाकर उनके कार्यों का अवलोकन करते हैं, तो इसका प्रभाव नियंत्रण की तरफ ही होता है। ऐसा करने में अधिकारियों को न केवल अपने कर्मचारियों के कार्यों का ही ज्ञान होगा वरन कर्मचारियों के मनोबल में भी वृद्धि होगी। लेकिन बड़े व्यावसायिक उपक्रम में ऐसी विधि को नहीं अपनाया जा सकता है। काफी विस्तृत आकार होने के कारण प्रत्यक्ष अवलोकन संभव नहीं हो पाता है। यदि इस विधि को अपनाया जाय तो अधिकारियों को अवलोकन या निरीक्षण से पूर्व एक योजना बनानी चाहिए तथा उसी के अनुरूप कार्य करना चाहिए।

2. **आचरण**–यदि एक अधिकारी अपने अधीनस्थों के व्यवहारों को नियंत्रित करना चाहता है तो उसे स्वयं व्यवहार एवं कार्य का उदाहरण कर्मचारियों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत किया गया उदाहरण अधीनस्था र लिए आदर्श बन जाता है और अधीनस्थ उसी आदर्श को अपने प्रयासों द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। यदि किला कालेज का प्राचार्य यह चाहता है कि उसके अध्यापक कक्षाओं को नियमित रूप से लें तो इसके लिए यह जरूरी हैं कि वह स्वयं नियमित रूप से कक्षाएं लें। यदि कोई अधिकारी अपने कर्मचारियों को समय का पाबंद करना चाहता है। सर्वप्रथम अधिकारी को ही समय का पाबंद होना चाहिए।

3. **नीतियां**–संस्था के द्वारा अपने दैनिक कार्यों के निष्पादन के लिए जिन मार्गदर्शन विवरणों और सिद्धांतों की आवश्यकता पड़ती है, उनको नीतियां पूरा करती हैं। नीतियों का आधारभूत लक्ष्ण यह है कि ये भावी कार्यो के नियंत्रण का आधार होती हैं।

4. **अभिलेख तथा प्रतिवेदन**–परिणामों को मापने के लिए अभिलेखों तथा प्रतिवेदनों से एक साधन के रूप में कार्य लिया जा सकता है। अभिलेखों एवं प्रतिवेदनों की तुलना योजनाओं से की जा सकती है। प्रतिवेदन तथा अभिलेख तब ही सफल साधन साबित हो सकते हैं जबकि वे सरल व स्पष्ट हों। इस प्रकार जो भी अभिलेख व प्रतिवेदन तैयार किया जाए वह वास्तविक कार्यों को प्रतिबिंबित करने वाले होने चाहिएं।

5. **चार्टस तथा मैन्युअल्स**–किसी भी संगठन का चार्ट उसके अधिकारियों और प्रबंधकों को संगठन के ढांचे के संबंध से अवगत कराता है तथा यह आपसी संबंधों तथा कार्य समूहों को भी स्पष्ट करता है। इस प्रकार के चार्टस संस्था की योजना को परिवर्तित करने तथा नीतियों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते है। संस्था की प्रगति को बतलाने वाले चार्ट ग्राफ्स आदि का प्रयोग प्रबंधक नियंत्रण के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कर सकते हैं। इस प्रकार मैन्यूअल्स भी प्रबंधकीय नियंत्रण के उद्देश्यों को पूरा करते हैं।

6. **लिखित निदेश**–लिखित निर्देशों के द्वारा की अधीनरों की कार्यक्षमता को नियंत्रित किया जा सकता है। लिखित निर्देशों के लिए यह आवश्यक है कि ये निर्देश अत्यधिक रूप से स्पष्ट होने चाहिएं। यदि ये निर्देश अस्पष्ट हैं तो कई प्रकार की गलतफहमियां प्रबंध के समक्ष आ सकती हैं तथा नियंत्रण की योजना असफल हो सकती है।

7. **बजट** – आधुनिक व्यावसायिक जगत में नियंत्रण के एक महत्वपर्ण साधन के रूप में बजट का प्रयोग किया जाता है। यह योजना का एक वित्तीय विवरण है जिसे पूर्व निर्धारित उददेश्यों को प्राप्त करने के लिए एक निश्चित समयावधि क मध्य लागू किया जाता है। यह नियंत्रण के साधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। वास्तविक कायो आर नियोजन निरंतर तुलना करने में यह आधार प्रदान करता है।

8. **लेखाकर्म**–प्रबंध कार्यक्षमता को मापने के लिए लेखाकर्म को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। लेखांकन के तीन पहलू हो सकते हैं:

   (अ) व्यावसिक सौदों का अभिलेख रखना।

   (ब) दैनिक व्यावसायिक क्रियाओं को नियंत्रित करना।

   (स) व्यावसायिक स्थिति का मूल्यांकन करना तथा भविष्य के लिए कुशलतम क्रियाओं का निर्धारण करना।

   लेखाविधि इस प्रकार की हो जिससे प्रबंध को अपेक्षित सूचनाएं समय पर प्राप्त हो सकें।

9. **सम–विच्छेद विश्लेषण**–उत्पादन की विभिन्न मात्राओं एवं लागतों के बीच संबंधों को ज्ञात करने के लिए संस्था का प्रबंध सदैव कोशिश करता है। यह संबंध प्रबंध को 'ब्रेक इवन पाइन्ट' विश्लेषणों व चार्टों के द्वारा

ज्ञात हो सकता है। यह पाइन् मूल्यों को निर्धारित करने, विक्रय मात्रा को तय करने तथा लाभों के संबंध को दिग्दर्शित करता है। यह चार्ट प्रबंध क यह सूचना देता है कि कुल लागत को प्राप्त करने के लिए किसी वस्तु विशेष की कितनी मात्रा बेची जाए। इनके माध्यम से उत्पादन एवं विक्रय क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित करना सरल होता है।

10. **नियंत्रण विभाग**–कोई भी संस्था अपने यहां नियंत्रण विभाग की स्थापना करके अपनी नियंत्रण प्रक्रिया को सरल बना सकती है। नियंत्रण विभाग का कार्य नियंत्रण के संबंध में योजना बनाना, समन्वय करना, मूल्यांकन करना तथा विचलन होने पर सुधारात्मक कार्यवाही करना है। यूरोपीय देश अपने संगठनात्मक ढांचे में नियंत्रण विभाग की स्थापना अलग से कर रहे हैं।

11. **अंकेक्षण**–यह नियंत्रण का एक बहुत उपयोगी रूप है। संस्था के कार्यों के मध्य नियंत्रण एवं पूर्व नियोजित कार्यों के विचलनों को ज्ञात करने का महत्वपूर्ण साधन है। अंकेक्षण आंतरिक या बाह्य व्यक्तियों के द्वारा कराया जा सकता है

नियन्त्रण के सिद्धान्त

कून्ट्ज और ओ, डोनल ने नियन्त्रण के चौदह सिद्धान्तों का वर्णन किया है:

1. **उद्देश्यों की सुरक्षा का सिद्धान्त**–नियन्त्रण प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो कि योजनाओं और वास्तविक कार्यो के विचलनों का अन्तर मालूम करके उन विचलनों को समाप्त कर दे।

2. **नियन्त्रण की कार्यकशलता का सिद्धान्त**–नियन्त्रण की व्यवस्था अधिक खर्चीली नहीं होनी चाहिए। मितव्ययता का अतिरिक्त नियन्त्रण प्रणाली, अधीनस्थ कर्मचारियों की पहल शक्ति, सत्ता के प्रत्यायोजना एवं मनोबल पर भी बुरा प्रभाव न डाले।

3. **नियन्त्रण दायित्व का सिद्धान्त**–नियन्त्रण करने का दायित्व प्रबन्धनों का होता है। यह दायित्व सौपा नहीं जा सकता

4. **प्रत्यक्ष नियन्त्रण का सिद्धान्त** नियन्त्रण प्रत्यक्ष रूप से किया जाना चाहिए। त्रुटियों का पता लगाने के स्थान पर त्रृटियों को होने से रोकने पर अधिक बल दिया जाए।

5. **योजनाओं के प्रतिबिम्ब का सिद्धान्त** नियन्त्रण का प्रयोजन योजनाओं के विचलनों का पता लगाकर उनके अनुसार कार्य करना होता है। नियन्त्रण अवस्था में योजनाएँ प्रतिबिम्बिता हो।

6. **संगठनात्मक उपयक्तता का सिद्धान्त** नियन्त्रण की व्यवस्था इस प्रकार से की जानी चाहिए कि वह संगठन के ढांचे के अनुकूल समयोजित की जा सकें।

7. **नियन्त्रण के अस्तित्व का सिद्धान्त**–नियन्त्रण प्रबन्धक की वैयाक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से स्थापित किए जाते हैं।

8. **प्रमापो का सिद्धान्त**–प्रमाप उद्देश्यात्मक शुद्ध एवं उपयुक्त होने चाहिए। अतः उक्त गुणों से युक्त प्रमाप उचित एवं न्यायपूर्ण होने के कारण अधीनस्थों द्वारा स्वीकार कर लिए जाएगें।

9. **क्रान्तिक बिन्दु नियन्त्रण का सिद्धान्त** नियन्त्रण प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो नियन्त्रण का ध्यान महत्वपूर्ण स्थलों की और आकर्षित कर सके।

10. **अपवाद का सिद्धान्त**–यद्यपि नियन्त्रण कार्य सम्बन्धित अधिकारी को ही क्रियान्वित करना चाहिए किन्तु विशेष परिस्थितियों में वरिष्ठ अधिकारियों को भी यह अधिकार होना चाहिए।

11. **लोच का सिद्धान्त**–नियन्त्रण प्रक्रिया में पर्याप्त लोच होनी चाहिए ताकि योजनाओं के असफल होने पर नियन्त्रण आसानी से हो सके।

12. **भावी नियन्त्रण का सिद्धान्त**–भावी नियन्त्रण स्थापित करने के लिए नियन्त्रण विधि को अपनाना चाहिए।

13. **पुनरावलोकन का सिद्धान्त**–प्रभावी नियन्त्रण के लिए समय–समय पर नियन्त्रण प्रक्रिया का पुनरावलोकन करके बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर लेना चाहिए।

14. **कार्य का सिद्धान्त**–जब तक विचलनों को समाप्त करने के लिए प्रभावी उपाय नहीं किये जायेंगे नियन्त्रण कार्य पूरा नहीं होगा।

सारांश

1 **नियंत्रण की परिभाषा** – प्रबंधकीय नियोजन से आशय कार्यक्रम को ससंगत, एकीकृत और सतुष्ट बनाने से है, जबकि नियंत्रण घटनाओं को योजनाओं के अनुरूप बनाने का प्रयास करता है।

2 **नियंत्रण की विशेषताएं** – i) नियंत्रण एक आधारभूत कार्य है ii) प्रत्येक प्रबंधक का अनिवार्य कार्य iii) नियंत्रण एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है iv) नियंत्रण प्रबंधकीय क्रिया का प्रारंभ व अंत दोनों है v) नियंत्रण न केवल पीछे देखना इंसाप आगे देखना भी है vi) नियंत्रण परिणामों से संबंधित है vii) कार्यवाही नियंत्रण का सार है viii) नियंत्रण की कुंजी भारार्पण में निहित है ix) सूचनाएं नियंत्रण की मार्गदर्शक होती है x) नियंत्रण के बल प्रयोग करना, कर्मचारियों पर दोष लगाना या दबाव डालना नहीं

3 **नियंत्रण के लाभ–** i) यह योजनाओं के लागू होने को सुनिष्चित करता है ii) यह मानवीय एवं भौतकीय साधनों के अनुकूलतम उपयोग को सुनिष्चित करता है iii) यह पर्यवेक्षण को सरल बनाता है iv) यह परिवर्तनषील वातावरण से निपटने में सहायक है v) यह समन्वय में सहायक है vi) यह कार्यकलषता वद्धि में सहायक है vii) इससे मनोवैज्ञानिक दबाव का लाभ मिलता है viii) यह विकेंद्रीकरण में सहायक है ix) नियंत्रण निर्णय लेने में सहयोग करता है x) यह लागत कम करने व किस्म सुधार में सहायक है

4 **नियंत्रण प्रक्रिया**–नियन्त्रण प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जिसमें काम करने के लिए उपयुक्त कार्यमान स्थापित किए जाते हैं। i) प्रमापों का निर्धारण ii) कार्यो का मूल्याकन करना iii) विचलनों के कारणों को ज्ञात करना iv) सुधारात्मक कार्य

5 **नियंत्रण की विधियाँ** – नियंत्रण हेतु सामान्यतः निम्न विधियां प्रयोग में लाई जाती हैंः i) अवलोकन कर्मचारियों के कार्यों का प्रत्यक्ष रूप में अवलोकन करके तथा उनसे प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करके उन कार्यों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। ii) आचरण iii) नीतियां iv) अभिलेख तथा प्रतिवेदन v) चार्टस तथा मैन्युअल्स vi) लिखित निदेश vii) बजट viii) लेखाकर्म ix) सम–विच्छेद विश्लेषण x) नियंत्रण विभाग

6 **नियन्त्रण के सिद्धान्त**– i) उद्देश्यों की सुरक्षा का सिद्धान्त ii) नियन्त्रण की कार्यकशलता का सिद्धान्त iii) नियन्त्रण दायित्व का सिद्धान्त iv) प्रत्यक्ष नियन्त्रण का सिद्धान्त नियन्त्रण प्रत्यक्ष रूप से किया जाना चाहिए v) त्रुटियों का पता लगाने के स्थान पर त्रृटियों को होने से रोकने पर अधिक बल दिया जाए। vi) योजनाओं के प्रतिबिम्ब का सिद्धान्त नियन्त्रण का प्रयोजन योजनाओं के विचलनों का पता लगाकर उनके अनुसार कार्य करना होता है। नियन्त्रण अवस्था में योजनाएँ प्रतिबिम्बिता हो। vii) संगठनात्मक उपयक्तता का सिद्धान्त नियन्त्रण की व्यवस्था इस प्रकार से की जानी चाहिए कि वह संगठन के ढांचे के अनुकूल समयोजित की जा सकें। viii) नियन्त्रण के अस्तित्व का सिद्धान्त ix) प्रमापो का सिद्धान्त x) क्रान्तिक बिन्दु नियन्त्रण का सिद्धान्त नियन्त्रण प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो नियन्त्रण का ध्यान

महत्वपूर्ण स्थलों की और आकर्षित कर सके। xi) अपवाद का सिद्धान्त xii) लोच का सिद्धान्त xiii) भावी नियन्त्रण का सिद्धान्त xiv) पुनरावलोकन का सिद्धान्त xv) कार्य का सिद्धान्त

अभ्यास

लघु प्रश्न :

1. नियंत्रण की परिभाषा क्या है ?
2. नियंत्रण की कोई दो विशेषताएँ बताइए।
3. नियंत्रण के चौदह सिद्धान्त किसने दिए ? कोई 3 सिद्धान्त बताइए।

दीर्घ प्रश्न :

1. प्रबंधन नियंत्रण की प्रक्रिया क्या है ? इसके सभी चरणों के बारे में विस्तार से बताएं।
2. कून्ट्ज और ओ, डोनल द्वारा दिए गए नियंत्रण के चौदह सिद्धांतों की व्याख्या करें।
3. नियंत्रण प्रक्रिया क्या है? नियंत्रण प्रक्रिया के मुख्य चार तत्वों की व्याख्या करें।

Unit–IV

परिवर्तन का प्रबंध

(Management of Change)

अध्याय का उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य आपको परिवर्तन के प्रबंधन की विस्तृत समझ प्रदान करना है। इस अध्याय को पढ़ने के बाद छात्र पाठक निम्नलिखित समझने में सक्षम होंगेः

1. परिवर्तन के प्रबंधन की परिभाषा
2. परिवर्तन के प्रकार
3. परिवर्तन की प्रकृति
4. संगठनात्मक परिवर्तन के कारण
5. प्रतिरोध को कम करने के उपाय
6. नियोजित परिवर्तन की प्रक्रिया
7. परिवर्तन एजेंट
8. बदलते वातावरण में प्रबंधक की भूमिका

जब सगठन में कोई परिवर्तन किया जाता है तो उसका कोई कारण अवश्य होता है। परिवर्तन के कारण आता दोनो हो सकते है (इन कारणों का वर्णन दसी अध्याय में आगे किया गया है।) संक्षेप में कहा जा सकता है कि कारण कुछ भी हो परिवर्तन तो करना ही होता है। यहां मुख्य प्रश्न यह है कि परिवर्तन के विरोध से कैसे बचा जाए? यह काम प्रचार किया जा सकता है। इसलिए कहा जा सकता है कि, ''प्रस्तावित परिवर्तन को निर्विरोध लागू करने का एक को परिवर्तन का प्रबन्ध कहते हैं।''

परिवर्तन के प्रबन्ध की परिभाषा

डॉ. पी. सामभैया के अनुसार, "वह प्रक्रिया जिसके द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन को लागू किया जाता है परिवर्तन का प्रबन्ध कहलाता उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अनेक कारणों से संगठन में परिवर्तन करना आवश्यक होता है। जिसका कुछ लोगों का हितों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है वे इसका विरोध करते हैं। परिवर्तन को निर्विरोध लागू करने की प्रक्रिया परिवर्तन प्रबन्ध कहलाती है।

परिवर्तन के प्रकार

व्यवसायिक जगत में परिवर्तन सामान्यत होते रहते हैं। परिवर्तन कम्पनी के उद्देश्यों, नीतियों, सिद्धान्तों तथा कार्य–प्रणालिर से सम्बन्धित हो सकते हैं या कम्पनी के उत्पाद, उत्पादन विधियों, कच्चे माल के प्रयोग तथा विपणन आदि से सम्बाधित । सकते हैं। इसके अतिरिक्त परिवर्तन का क्षेत्र कम्पनी के प्रबन्ध दर्शन, संगठन के स्वरूप या ढांचे तथा कम्पनी अथवा उसव विभिन्न इकाइयों की अवस्थापना को सम्बंधित हो सकता है। परिवर्तन का सम्भावित क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसकी सम सूची बना पाना एक कठिन कार्य है।

फिलिप्पो ने समस्त प्रकार के परिवर्तनों का निम्नांकित तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया है। ये श्रेणियाँ हैः–

1. कार्मिक दल में परिवर्तन
2. कार्य–विधियों में परिवर्तन
3. संगठन के ढाँचे तथा भौतिक अवस्थापन में परिवर्तन

डार्विन कार्टराइट अपने लेख में हमारा ध्यान परिवर्तन तथा परिवर्तन प्राप्त करने के विभिन्न माध्यमों जैसे 'शिक्षा' 'प्रशिक्षण 'मार्गदर्शक', 'मत शिक्षण' आदि की ओर खीचते हुए लिखते हैं कि परिवर्तन को प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। अतः क्र यह सम्भव नहीं है कि हम 'परिवर्तन के स्थान के पर 'शिक्षा', प्रशिक्षण जैसे शब्दों का प्रयोग करें जो व्यवहार में परिवर्तन के तलना में श्रेष्ठ माने जाते हैं। जिनका प्रतिरोध भी अपेक्षाकृत कम ही होगा लेकिन लेखक स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर भी प्रदा करते हैं कि 'शिक्षा' शब्द से हमे यह आभास मिलता है कि समाज के प्रचालित मूल्यों एवं मान्यताओं को नकारा नहीं जायेग तथा 'शिक्षा' लाभदायक परिवर्तनों को जन्म देगी। जबतक दूसरी ओर परिवर्तन शब्द इस दिशा में कोई आश्वासन प्रदान नहीं करता। परिवर्तन शब्द की अन्य शब्दों के साथ तुलनात्मक समीक्षा करते हुए वे आगे लिखते है कि प्रशिक्षण तथा मार्गदर्शक और शब्दों का प्रयोग हमारी विचारधारा को सीमित एवं सकुचित दिशा प्रदान करता है तथा इससे हमारा ध्यान व्यक्तियों के कार गिने पहलओं की ओर ही केन्द्रित हो जाता है जबकि दूसरी और परिवर्तन' शब्द के प्रयोग से हमारा दृष्टिकोण व्यापक एवं विचारणार सामान्य बनी रहती है। अतः लेखक शब्दार्थ–शास्त्र की दृष्टि से परिवर्तन शब्द के प्रयोग को ही श्रेयस्कर मानते है।

परिवर्तन की प्रकृति

परिवर्तन की प्रकृति पर समुचित रूप से प्रकाश डालता है इस प्रकार परिवर्तन

1. समाज में प्रचलित मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुकूलन अथवा प्रतिकूलन किसी भी प्रकार का हो सकता है।
2. परिवर्तन, विद्यमान व्यवस्था के लिए हितकारी अथवा अहितकारी सिद्ध हो सकता है।
3. परिवर्तन का प्रभाव क्षेत्र सामान्यतः व्यापक माना जाता है अतः इस शब्द का प्रयोग तकनीकी, कार्मिक, सामाजिक, संगठनात्मक आदि सभी क्षेत्रों में सुगमता के किया जा सकता है।

परिवर्तन की प्रकृति से सम्बन्धित विभिन्न विचारों को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता हैः

1. **परिवर्तन प्रमुख एवं गौण हो सकते हैं**–ऐसे परिवर्तन जो सम्पूर्ण संगठन को प्रभावित करता है और अभिनव तरीके अपनाते है प्रमुख परिवर्तन जाने जा सकते हैं। परिवर्तन जो संगठन के किसी एक भाग की प्रभावित करते हैं महत्वपर्ण नहीं होते, पुनरावृत्ति प्रकृति के होते है, गौण परिवर्तन कहलाते है।
2. **परिवर्तन व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक**–ऐसे परिवर्तन जो कार्मिक की व्यक्तिगत विशेषताओं यथा ज्ञान, स्वभाव, आत्मविश्वास, सहनशीलता, महत्वकांशा. नैतिक मल्यों, जीवन स्तर आदि को प्रभावित करते हैं और उसके व्यवहार में न लाते हैं, व्यक्तिगत परिवर्तन कहलाते हैं। ऐसे परिवर्तन जो समूह के व्यवहार में बदलाव लाते है, सगठनात्मक परिवर्तन माने जाते हैं।
3. **परिवर्तन विकासात्मक एवं क्रान्तिकारी हो सकते है**–संगठन के विकास की अवस्था में यदि परिवर्तनों की गति धीर एवं सामान्य है तो इसे विकासात्मक परिवर्तन कहा जाता है। ऐसे परिवर्तनों में जोखिम की मात्रा का होती है और आसार से मान लिए जाते हैं इसके कारण तीव्र प्रतिरोध का विषम नहीं बनते । यदि परिवर्तनों की गति तीव्र, उग्र एवं क्रान्तिकारी है तो इन्हें क्रान्तिकारी परिवर्तन माना जायेगा। ऐसे परिवर्तनों में जोखिम अधिक रहती है और इनका प्रतिरोध भी खूब होता है।

4. **परिवर्तन निष्क्रिय एवं सक्रिय हो सकते है**–ऐसे परिवर्तन जो स्वतः ही आते है जिनके लिए पहल नहीं करनी पड़ी वे निष्क्रिय परिवर्तन होते हैं। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संयोजित रूप से जो परिवर्तन किए जाते हैं सक्रिय पालिका माने जाते हैं जो अपने आप नहीं आते, नव प्रवर्तन सक्रिय परिवर्तन माना जाता है।

संगठनात्मक परिवर्तन के कारण

परिवर्तन प्रकृति का नियम है अतः संगठनों में विभिन्न कारणों से परिवर्तनों को अपनाया जाता है। निम्नलिखित कारण परिवर्तन के लिए उत्तरदायी माने जा सकते हैंः

1. **वातावरण**–आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण का प्रत्येक संगठन, संस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। कोई भी संगठन वातावरण के प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता है ज्योही इसमें परिवर्तन होता है त्यों ही इसके अनुरूप संगठन में भी परिवर्तन लाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार वातावरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न परिस्थितियाँ संगठनात्मक परिवर्तन का मुख्य कारण होती हैं।

2. **संगठन की नीतियां**–परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप संगठन की नीतियों में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं । औद्योगिक एवं लाइसेन्सिग नीतियों में भी समय–समय पर सरकार द्वारा किए जाने वाले परिवर्तनों के अनुरूप ही संगठन की क्रय नीति, विक्रय नीति, मूल्य नीति, क्षतिपूर्ण नीति, आदि में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

3. **संगठनात्मक ढाँचा**–संगठन संरचना के अनुसार ही प्रत्येक संगठन में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न प्रबंधकीय क्रियायें की जाती रहती है। यदि यह प्रक्रिया संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त होती तो इसमें परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि वातावरण का भी किसी संगठन की संरचना पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अतः वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुरूप ही संगठनात्मक ढाँचे में परिवर्तन किया जाता है।

4. **कार्य की प्रकृति**–विभिन्न तकनीकी परिवर्तनों के कारण कार्य की प्रकृति एवं प्रक्रिया में भी परिवर्तन हो रहते है। जो कार्य पूर्व में हाथ से किये जाते थे। वे आज आधुनिक यन्त्रों एवं उपकरणों की सहायता से किये जाने लगे थे। इन काया का कुशलता पूर्वक निष्पादन योग्य एवं प्रशिक्षण प्राप्त एवं कार्य में हो रहे परिवर्तनों के लिए उच्च अधिकारियों को अनेक परिवर्तन करने पड़ते हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसे संगठनों का एक आवश्यक अंग बन जाता है।

5. **अन्तर निर्भरता**–किसी संगठन की संरचना कृत्य, तकनीक, मानव, नियम, नियमन, राष्ट्रीय हित एवं उपलब्ध विभिन्न संसाधनों द्वारा की जाती है। ये सभी तत्व या घटक परस्पर आधारित है। इनमें से किसी में परिवर्तन आने से अन्य घटका में परिवर्तन करना आवश्यक ही जाता है। अतः इन घटकों की अन्तर–निर्भरता परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होती है।

6. **कार्मिक**–संगठन के आकार में वृद्धि एवं तकनीकी परिवर्तनों के कारण संगठन में नये कामिका साथ ही प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, छटनी, सेवा निवत मृत्य, पद–मुक्ति, पदत्याग आदि के कारण भी कार्मिकों परिवर्तन होता है। प्रकृति के नियमानुसार दो कार्मिक सामान्यतया एक सा ज्ञान, दर्शन, व्यवहार, कार्यशैली, समझ एवं क्षमता नहीं रखते। अतः कार्मिक में हुए परिवर्तन से संगठन की अन्य नीतियों विशेषतः सेविवर्गीय नीतियें में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

7. **प्रतिस्पर्धा** –प्रतिस्पर्धा के इस युग में वही संगठन जीवित रख सकता है जो अन्य प्रतिस्पर्धा संगठनो की नीतियों, योजनाओं, कार्य पद्धतियों के अनरूप अपनी योजनाओं नीतियों कार्य पद्धतियों आदि में परिवर्तन कर

लता है। इस प्रकार प्रतिस्पर्धा संगठन दूसरे संगठनों के प्रबन्धकों को विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों के लिए बाध्य कर देते है।

8. **संयोजन**–गलाकाट प्रतिस्पर्धा की समाप्ति के लिए व्यावसायिक जगत में संयोजनों को बढ़ावा मिल रहा है। व्यवसायिक इकाइयों के सम्मिश्रण, बिलियन एवं अधिग्रहण से उनके स्वामित्व एवं प्रबन्ध में परिवर्तन हो जाता है। फलस्वरूप संयोजित इकाइयाँ विभिन्न परिवर्तनों के लिए प्रेरित होती हैं।

9. **आकस्मिकता**–यदा कदा संगठनों को परिस्थितियों में आकास्मिक परिवर्तनों के कारण परिवर्तन के लिए बाध्य होना पड़ता है। उदाहरणार्थ सरकार द्वारा औद्यौगिक नीति में समय–समय पर अकस्मात किए जाने वाले संशोधनो से औद्योगिक संगठनों को अपनी नीतियों में भी परिवर्तन करना पड़ता है। इसी प्रकार कार्मिकों द्वारा अचानक हड़ताल पर चले जाने से प्रबन्धकों को परिवर्तनों के लिए तत्पर होना पड़ता है।

10. **तकनीकी विकास**–आज के वैज्ञानिक यग में विभिन्न अनसन्धानों के द्वारा आये दिन तकनीकी परिवर्तन होते रहत हैं। नवीन यन्त्रों एवं उपकरणों का अविष्कार उत्पादन विधियों में सुधार, विशेषज्ञों की सेवाओं की उपलब्धी, स्वचालित यन्त्रा का उपयोग, संचार एवं परिवहन के नवीन संसाधनों जैसे कोरियर सर्विस, एयर टैक्सी सर्विस, एस. टी. डी. टेलिफोन, फैक्स सर्विस आदि का प्रयोग, शक्ति के नवीन संसाधनों यथा स्टोर एनर्जी एल. पी. जी. गैस आदि का प्रचलन, अच्छा किस्म का माल आदि परिवर्तन के लिए प्रेरित किया है।

प्रतिरोध को कम करने के उपाय

परिवर्तन एवं उसके प्रतिरोध का क्रम निरन्तर चलता रहता है। प्रबन्धक का यह कर्तव्य है कि वह ऐसी व्यवस्था करे जिसमें परिवर्तन से प्रभावित व्यक्ति एवं समूह परिवर्तन को ग्रहण करने के लिए तैयार रहे और परिवर्तन का कम से कम प्रतिरोध हो। इन उपायों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता हैः–

1. **सूचना प्रदान करना**–परिवर्तन को कार्यान्वित करने से पूर्व उसकी सूचना, परिवर्तन से प्रभावित वाले व्यक्तियों एवं समूह को प्रदान की जानी चाहिए। उन्हें यह बताया जाना चाहिए कि परिवर्तन की आवश्यकता क्यों उत्पन्न हुई। यदि उन्हें परिवर्तन की आवश्यकता के विषय में प्रभावित एवं संतुष्ट किया जाता है तो प्रतिरोध काफी हद तक कम किया जा सकता है। यहा पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि यदि प्रबन्धक द्वारा परिवर्तन की सूचना कार्मिकों को प्रदान नहीं की जाती है तो कार्मिक अफवाहों तथा अपुष्ट सूचनाओं के माध्यम से परिवर्तन की जानकारी प्राप्त कर लेते है और उसी आधार पर अपने मत को निधारित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त की गई सूचनाएं वास्तविकता से अलग होती है और कार्मिकों का प्रतिरोध भी काफी सीमा तक अनुचित एवं अनावश्यक होता है। इस स्थिति से बचने का यही उपाय है कि प्रबन्धक परिवर्तन की तर्कयुक्त सूचना प्रभावित व्यक्तियों एवं समूहों को स्वयं प्रदान करे।

2. **सहभागिता**–परिवर्तन को कार्मिकों पर थोपने का प्रयास विफल होते हैं। अतः कार्मिको की सहमति प्राप्ति करके ही परिवहन को कार्यान्वित किया जाना चाहिए । परिवर्तन के विषय एवं उसको लागू करने की विधि के सम्बन्ध में कार्मिकों की सहन काफी महत्वपूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त पारस्परिक विचार विमर्श में कार्मिकों के विरोध–प्रतिरोध का गबार काही तक निकल जाता है। इस तरह परिवर्तन का कार्यान्वयन सुगम हो जाता है।

3. **आर्थिक सुरक्षा**–कार्मिक परिवर्तन को स्वेच्छा से स्वीकार करें। इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें इस बात की प्रदान की जाए कि परिवर्तन के फलस्वरूप उन पर किसी प्रकार का आर्थिक सकंट नहीं आने दिया जायेगा। इस प्रकार की मनोवैज्ञानिक निश्चितता प्रदान करती है जिससे उनकी मन स्थिति परिवर्तन को ग्रहण करने योग्य हो जाती है।

4. **सहानुभूति**–परिवर्तन के कारण कार्मिको को पूर्व प्राप्त योग्यता एवं नपुण्य अप्रचलन में आ सकती है। उन्हें परिवर्तन के अनुरूप नये ज्ञान, योग्यता एवं नपण्य को प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है अनौपचारिक सम्बंध टुटने लगते है तथा कार्मिक को नये सन्तुलन एव सम्बंध बनाने पड़ते है। ऐसी स्थिति में आवश्यक होता है कि प्रबन्ध वस्तुस्थिति को समझे और कार्मिको के साथ सहयोग एवं सहानुभूति का व्यवहार करे। इससे परित को अपनाने में सहायता मिलती है।

5. **परम्परागत प्रबन्ध पद्धति में परिवर्तन**–परिवर्तन के प्रबन्ध के लिए आवश्यक है कि आवश्यक है कि परम्परागत प्रबन्ध पद्धतियों में आवश्यक परिवर्तन किया जाये। 'सहभागिता' 'सहानुभूति' एवं 'संवहन' जिनकी चर्चा हमने अभी की है। ये सब परम्परागत प्रबन्ध के साथ नहीं चल सकते। परम्परागत प्रबन्ध की नीव 'सता' एव 'एक मार्गीय सवंहन' पर आधारित होती है। इस प्रकार का प्रबन्ध कठोर नियन्त्रण में विश्वास रखता है। जबकि परिवर्तन के प्रबन्ध के लिए अनन के वातावरण को बनाने की आवश्यकता होती है।

   प्रबन्ध की परम्परागत पद्धति में परिवर्तन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष और भी है। जिनकी और पाठको का ध्यान आकार करना आवश्यकता है। परम्परागत 'प्रबन्धक' 'सता', नियन्त्रण', 'एक–मार्गीय सवंहन' आदि के वातावरण में अपने को सुरक्षित करता है। अतः

   वातावरण एवं पद्धतियों में परिवर्तन के कारण परम्परागत प्रबन्धक की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। अपनी 'सुरक्षा' को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रबन्धक स्वयं परोक्ष रूप से परिवर्तन का प्रतिरोध कर सकता है। अतः प्रतिरोध को दर की के लिए जो काम कार्मिकों के स्तर पर सुझाये गऐ है। उन्हें प्रबन्धकों के स्तर पर उठाने की यदि अधिक नहीं तो कम से कम उतनी आवश्यकत तो है ही।

6. **अन्य उपाय–**

   i. परिवर्तन को प्रभावकारी ढंग से लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्ध उसका पूरी तरह से नियोजन करे। अनियोजित परिवर्तन के सफल होने की सम्भावना बहुत कम होती है।

   ii. परिवर्तन, पुरान व्यक्तियों की अपेक्षा नये व्यक्तियों को अधिक ग्राह्य होता है अगर इस विषय में प्रबन्धकों के समक्ष विकल्प हो तो वह चुनाव कर सकता है।

   iii. परिवर्तन का लाभ परिवर्तन से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को प्राप्त होना चाहिए। लाभ प्राप्ति की आशा से वे परिवर्तन को ग्रहण करने की अच्छी स्थिति में होंगे।

नियोजित परिवर्तन की प्रक्रिया

जैसा कि स्पष्ट है कि अनेक आंतरिक एवं बाहरी तत्व ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में संगठन को प्रभावित करते रहते हैं। इसी प्रभाव के कारण संगठन में परिवर्तन करने पड़ते हैं। वैसे भी बदलते वातावरण के साथ बदलाव लाने में ही समझदारी है दूसरी ओर, परिवर्तन के विरोध की आशंका से भी इंकार नहीं किया जा सकता। अन्य शब्दों में, यदि परिवर्तन को नियोजित ढंग से लागू किया जाए तो विरोध को समाप्त नहीं तो न्यूनतम अवश्य किया जा सकता है। अब पुनः प्रश्न उठता है कि यह नियोजित ढंग क्या है। परिवर्तन का नियोजित ढंग है 'नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया।' यदि इस प्रक्रिया का पालन करके परिवर्तन लागू किया जाये तो सफलता की पूरी सम्भावना रहती है।

1. **परिवर्तन की आवश्यकता की पहचान**–नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया में सर्वप्रथम यह देखा जाता है कि परिवर्तन की आवश्यकता क्यों हैं? आखिर परिवर्तन का विचार मस्तिष्क में क्यों आया? परिवर्तन की आवश्यकता का सम्बन्ध संगठन को प्रभावित करने वाले तत्वों से है। संगठन को प्रभावित करने वाले अनेक

तत्व हो सकते हैं। यहां पर यह देखने का आवश्यकता है कि कोई विशेष तत्व संगठन को किस प्रकार प्रभावित करता है। यह जानकारी मिलते ही परिवर्तन का परिवर्तन की आवश्यता का पता लग जाता है।

2. **परिवर्तन क्षेत्र की पहचान**–नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया के दूसरे चरण पर परिवर्तन क्षेत्र की पहचान की जाती है। यह निश्चित किया जाता है कि परिवर्तन कार्य सम्बन्धी होगा अथवा संगठन सम्बन्धी अथवा दोनों प्रथम चरण पर परिवतः की आवश्यता की जानकारी प्राप्त होने से एक इशारा मिल जाता है कि परिवर्तन किस प्रकार का होगा। उदाहरण मालिकी में गिरावट के अनेक कारण हो सकते हैं–माल की घटिया क्वालिटी, विज्ञापन में कमी, घटिया ग्राहक सव उधार सुविधा न देना आदि। माना कि प्रस्तुत उदाहरण में बाजार सर्वेक्षण के बाद पता चलता है कि माल की घाटिया किस्म बिक्री में गिरावट का कारण है। पुनः अध्ययन करने पर पता चलता कि माल की किस्म को आधनिक मशीनों द्वारा सधारा जा सकता है। अतः स्पष्ट हुआ कि यहां आधुनिक मशीनों की स्थापना करना

3. **परिवर्तन के लिए नियोजन**–जैसे ही यह स्पष्ट हो जाए कि परिवर्तन किस क्षेत्र में किया जाना है के लिए नियोजन की कार्यवाही शुरू हो जाती है। परिवर्तन के लिए नियोजन में निम्नलिखित तीन प्रश्नों के बारे में निर्णय लिया जाता हैः–

   1. परिवर्तन कौन करेगा?
   2. परिवर्तन कब किया जाएगा?
   3. परिवर्तन कैसे किया जाएगा?

4. **परिवर्तन शक्तियों का निर्धारण** – परिवर्तन नियोजन करने के बाद परिवर्तन को प्रभावित करने वाली शक्तियों का निर्धारण किया किया जाता है। परिवर्तन से एक व्यक्ति एक समह अथवा परा संगठन प्रभावित हो सकता है। पहले परिवर्तन से प्रभावित होने व होने वाली कुल शक्तियों का निर्धारण किया जाता है। इसके बाद यह देखा जाता है कि उनमें से कितनी शक्तियां परिवर्तन के पक्ष में हैं और कितनी विरोध में।

5. **परिवर्तन को लाग करना** – यदि परिवर्तन के पक्षधर अपेक्षाकत अधिक लोग अथवा शक्तियां हों तो कार्यक्रम ता तुरत लागू कर देना चाहिए। प्रस्तुत उदाहरण में परिवर्तन को लागू करने का अभिप्राय–आधुनिक मशीनों को क्रय करने की तैयारी शरू करना प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना, उत्पादन विभाग में एक योग्य प्रबन्धक को स्थानांतरित करना तथा उपविभागीय प्रबन्धक के पद की स्थापना व उसकी नियुक्ति का प्रबन्ध करना।

6. **प्रतिपुष्टि**–नियोजन परिवर्तन प्रक्रिया के अन्तिम चरण के रूप में यह देखा जाता है कि क्या परिवर्तन कार्यक्रम सही दिशा की ओर जा रहा है अथवा नहीं। यह जानकारी प्राप्त करना प्रतिपुष्टि कहलता है। परिवर्तन कार्यक्रम लागू करने से पहले पूरा विश्लेषण करने के बाद भी कुछ विरोधी शक्तियां बाधा उत्पन्न कर सकती हैं या कोई अन्य कठिनाई आड़े आ सकती है। यही कारण है कि परिवर्तन कार्यक्रम पर लगातार निगरानी रखनी होती है। किसी भी समस्या के तुरन्त समाधान से परिवर्तन कार्यक्रम की सफलता सुनिश्चित होती है।

प्रत्येक संगठन गतिशील वातावरण में ही जन्म लेता है और विकसित होता है। इसलिए संगठन गतिशील होता है अर्थात इसमें परिवर्तन होते रहते हैं। यही कारण है कि जैसे ही एक परिवर्तन को लागू करने का लाभ पूरा होता है तो दूसरी समस्या आड़े आ जाती है परिणाम स्वरूप, इस नियोजित परिवर्तन प्रक्रिया को फिर से दोहराना पड़ता है और यह क्रम लगातार चलता रहता है।

परिवर्तन एजेंट

परिवर्तन एजेंट का अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जो परिवर्तन कार्यक्रम को संगठन में लागू करते है। विस्तार के आधार पर परिवर्तन दो प्रकार का हो सकता है–i. छोटा परिवर्तन तथा ii. बड़ा परिवर्तन। जहां तक छोटे परिवर्तन का प्रश्न है यह काम संबंधित विभागीय प्रबन्धकों द्वारा पूरा कर लिया जाता हैं इसके लिए विशेषज्ञों की जरूरत नहीं होती। लेकिन बड़े परिवर्तन को लागू करने के लिए जिन परिवर्तन एजेंटों की जरूरत होती हैं वे निम्नलिखित हैः

(अ) आंतरिक परिवर्तन एजेंट

आंतरिक परिवर्तन एजेंट दो प्रकार के होते हैः

1. मुख्य प्रबन्धक–बड़े परिवर्तन को लागू करने हेतु मुख्य प्रबन्धक परिवर्तन एजेंट के रूप में काम कर सकता है। सारा परिवर्तन कार्यक्रम मुख्य प्रबन्धक की देख–रेख में तैयार किया जाता है । जैसे ही परिवर्तन कार्यक्रम लागू होता है तो मुख्य प्रबन्धक अपने आप को कार्यक्रम से अलग कर लेता है और आगे की जिम्मेदारी सम्बन्धित विभागीय प्रबन्धक संभालते हैं। अन्य शब्दों में परिवर्तन की प्रांरभिक अवस्था में मुख्य प्रबन्धक और बाद में सम्बन्धित विभागीय प्रबन्धक परिवर्तन एजेंट के रूप में काम करते हैं। संक्षेप में, मुख्य प्रबन्धक की भूमिका प्रभावपूर्ण परिवर्तन के लिए नेतृत्व प्रदान करना है।

2. परिवर्तन सलाहकार–कम्पनी के किसी भी स्तर को कर्मचारी की नियुक्ति परिवर्तन सलाहकार के रूप में की जा सकती है. है। पारा ये वह कर्मचारी होते हैं जो समय–समय पर परिवर्तन एजेंट का प्रशिक्षण पेशेवर सलाहकारों से लेते रहते हैं। डन परिवर्तनो एजेटो को एक विशेष परिवर्तन को लागू करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती हैं। एक विशेष समय तक ये लगातार परिवर्तन के काम को करते हैं। जैसे ही परिवर्तन कार्यक्रम को लागू करते का काम पूरा हो जाता है ये पुनः अपने पैतृक विभाग में चले जाते हैं। ये परिवर्तन एजेंट कम्पनी के कर्मचारी होते हैं तथा सभी अन्य कर्मचारियों से होते हैं। इनका मुख्य काम विरोध कर सकने वाले लोगों से सम्पर्क स्थापित करके ऐसा वातावरण तैयार कर है ताकि परिवर्तन को सभी सहर्ष स्वीकार कर लें। संक्षेप में, परिवर्तन सलाहकार की भूमिका परिवर्तन संबंधी शिक्षा प्रदान करने की होती है।

(ब) बाहरी परिवर्तन एजेंट

बहरी परिवर्तन एजेंटो की श्रेणी में मुख्यतः पेशेवर सलाहकारों को सम्मिलित किया जाता है।

पेशेवर सलाहकार–कई बार परिवर्तन को गंभीरता को समझते हुए पेशेवर सलाहकारों को परिवर्तन एजेंटों के रूप में पा जाता है। पेशेवर सलाहकार अपने–अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं। जैसे प्रबन्ध विशेषज्ञ, वित विशेषज्ञ. विपणन विशेषज्ञ. श्रम संबंध विशेषज्ञ आदि। इनकी नियुक्ति उच्च प्रबन्ध द्वारा की जाती है। ये विशेषत अपनी सेवाओं के बदले पर पारिश्रमिक लेते हैं। प्रायः ये विशेषज्ञ परिवर्तन कार्यक्रम को आंतरिक प्रबन्धकों को समझाते हैं। परिवर्तन कार्यक्रम को वास्तविक रूप में लागू करने का काम आंतरिक प्रबन्धक ही करते हैं । संक्षेप में, पेशेवर सलाहकार की भूमिका कार्यक्रम सला की होती है।

बदलते वातावरण में प्रबन्धक की भूमिका

वर्तमान युग को प्रबन्धकीय क्रान्ति का युग कहा जाता है प्रबन्धकीय क्रान्ति का अर्थ व्यावसिक तथा गैर–व्यावसायिक सभी क्षेत्रों में प्रबन्ध की बढ़ती हुई भूमिका से है कुछ वर्ष पूर्व व्यवसाय का स्वामी स्वयं का काम भी कर लेता था लेकिन आज स्वामी प्रबन्धक के मध्य तलाक हो चूका है अर्थात स्वामी व्यवसाय में धन का

विनियोग करते है और स्वतंत्र पेशेवर प्रबन्धरक व्यवसाय का प्रबन्ध करते है। प्रबन्ध स्वामियों व श्रमिकों के मध्य एक कड़ी का काम करते है।

प्रबन्धकों के बढ़ते हुए महत्व का एक मात्र कारण है बदलता वातावरण । व्यवसाय के वातावरण में लगातार परिवर्तन होते रहते है बदलते वातावरण में व्यवसाय को सफलता पूर्वक चलाना कोई आसान काम नहीं है जब तक हम अपने आप को बदलते वातावरण के साथ संयोजित नहीं करेगें तब तक सफल नहीं हो सकते। बदलते वातावरण के साथ मिलकर चलने का काम पेशेवर प्रबन्धकों ही कर सकते है।

विकसित देशों ने प्रबन्धक की नई छवि के महत्व को समझा है और यही कारण है कि वे बदलते वातावरण का सामना आसानी से कर रहे हैं अन्य देश भी बदलते वातावरण के प्रबन्ध की भूमिका के महत्व को धीरे–धीरे समझने लगे हैं।

सारांश

1) परिवर्तन के प्रबंधन की परिभाषा है कि निर्विरोध परिवर्तन को लागू करने की प्रक्रिया को परिवर्तन का प्रबंधन कहते हैं ।

2) **परिवर्तन के प्रकारः** (i) काम से संबंधित परिवर्तन; (ii) संगठन के ढांचे तथा भौतिक अवस्थापन से संबंधित परिवर्तन (iii) कार्य विधियों में परिवर्तन

3) **परिवर्तन की प्रकृतिः** (i) परिवर्तन प्रकृति का नियम है; (ii) परिवर्तन से विकास होता है; (iii) परिवर्तन निरंतर प्रक्रिया हैय (iv) परिवर्तन व्यक्तिगत या संगठनात्मक हो सकता है; (v) परिवर्तन सक्रिय या निष्क्रिय हो सकता है

4) **संगठनात्मक परिवर्तन के कारणः** (क) आंतरिक कारक – (i) प्रबंधकीय (ii) विकास (iii) संगठनात्मक (ख) बाह्य कारक – (i) आर्थिक (ii) सरकारी (iii) तकनीकी (iv) सामाजिक

5) **प्रतिरोध को कम करने के उपायः** (i) भागीदारीय (ii) शिक्षा और प्रशिक्षणय (iii) सहानुभूतिय (iv) आर्थिक सुरक्षाय (v) सूचनायें साझा करें

6) **नियोजित परिवर्तन की प्रक्रियाः** (i) परिवर्तन की आवश्यकता की पहचान; (ii) परिवर्तन क्षेत्र की पहचान; (iii) परिवर्तन क लिए नियोजन; (iv) परिवर्तन शक्तियों का निर्धारण; (v) परिवर्तन को लागू करना; (vi) प्रतिपुष्टि

7) **परिवर्तन एजेंटः** (ए) आंतरिक परिवर्तन एजेंट – (i) मुख्य प्रबंधक, (ii) परिवर्तन सलाहकार। (बी) बाहरी परिवर्तन एजेंट – पेशेवर सलाहकार

8) बदलते वातावरण में प्रबंधक की भूमिका

अभ्यास

लघु प्रश्न

1. परिवर्तन का अर्थ, परिवर्तन के प्रतिरोध और परिवर्तन के प्रबंधन को लिखें।
2. परिवर्तन के लिए जिम्मेदार आंतरिक कारकों की व्याख्या करें।
3. किसी भी तीन काम से संबंधित परिवर्तन लिखें।
4. संगठन संबंधित तीन बदलावों को लिखें।
5. हम प्रतिरोध को बदलने के लिए श्समूह स्तर परश क्या कर सकते हैं।
6. बदलते परिवेश में प्रबंधन के उभरते क्षितिज पर एक संक्षिप्त नोट दें।
7. संक्षेप में बताएं, परिवर्तन का प्रतिरोध।

दीर्घ प्रश्न

1. परिवर्तन और परिवर्तन के प्रबंधन से आप क्या समझते हैं? परिवर्तन की प्रकृति के बारे में बताएं।
2. परिवर्तनों के कारणों पर चर्चा करें।
3. प्रबंधन परिवर्तन से आपका क्या अभिप्राय है? संगठनात्मक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कारकों पर चर्चा करें।
4. नियोजित परिवर्तन से आपका क्या तात्पर्य है? नियोजित परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाइए।